VISHWA - Hindi Literary Magazine

PRINTED VISHWA - ISSN 25721550
ONLINE e-VISHWA - ISSN 25721569

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति
International Hindi Association

OCTOBER 2026

विश्वा

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की त्रैमासिक मुख पत्रिका

वर्ष 42 ◆ अंक 4 ◆ अक्टूबर 2026

www.hindi.org Year 42 Volume 4 A Lingo-Cultural Hindi quarterly Published by International Hindi Association October 2026

विभिन्न शाखाओं द्वारा आयोजित कार्यक्रम

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति
International Hindi Association

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की त्रैमासिक मुख पत्रिका

विश्वा

प्रकाशन त्रैमासिक – जनवरी, अप्रैल, जुलाई, अक्टूबर
Published Quarterly – January, April, July, October

प्रबन्ध सम्पादक - **श्री आलोक मिश्रा**
Managing Editor - **Mr. Alok Misra**
New Hampshire, U.S.A.
ई-मेल - alok.iha@gmail.com
दूरभाष - 603-681-9150

रमेश जोशी, प्रधान सम्पादक
Mr. Ramesh Joshi, Chief Editor
Email – joshikavirai@gmail.com
editor@hindi.org

डॉ. अंजना सिंह सेंगर, डिजीटल मीडिया एडिटर
Dr. Anjana Singh Sengar, Digital Media Editor
Email – anjanasiak90@gmail.com

भारती मिश्र, संकलन, संपादन सहयोग
Bharti Mishra, Collection, Co-editor
Email – batua896@gmail.com

यदि आप चाहते हैं कि आपके मित्रगण भी विश्वा पढ़ें, विश्वा से जुड़ें तो हमें उनका ई मेल का पता उपलब्ध करवा दें जिससे हम उन्हें विश्वा की पीडीएफ़ भिजवा सकें। संपर्क – mail@hindi.org

विश्वा के लेखकों से

1. एक बार में दो से ज्यादा प्रविष्टियाँ न भेजें।
2. रचनाओं में एक पक्षीय, कट्टरतावादी, अवैज्ञानिक, साम्प्रदायिक, रंग-नस्लभेदी, अतार्किक, अन्धविश्वासी, अफवाही और प्रचारात्मक सामग्री से परहेज करें। सर्वसमावेशी और वैश्विक मानवीय दृष्टि अपनाएँ।
3. अपनी रचना की प्रूफ रीडिंग करके भेजें। वर्तनी (Spelling) के लिए हम जिम्मेदार नहीं होंगे। इससे रचना की गुणवत्ता भी संदेहास्पद हो जाती है।
4. रचना एरियल यूनिकोड MS या मंगल फॉण्ट (12) में भेजें।
5. पेज पर सिर्फ रचना का नाम और रचना ही लिखें। रचना छपने लायक फॉर्मेट में भेजें।
6. रचनाएँ एक से अधिक हों तो अलग-अलग word और pdf document में भेजें।
7. अपने बायो डेटा में डाक का पता, ईमेल, फोन नंबर ज़रूर भेजें। हाँ, ये सूचनाएँ उतनी ही छापी जायेंगी जितना आप चाहेंगे लेकिन हमारी जानकारी के लिए ये आवश्यक हैं। यदि आपकी पुस्तकें प्रकाशित हैं तो उनका विधा सहित उल्लेख भी करें। अपने बायोडाटा को word और pdf document में भेजें।
8. अपनी पासपोर्ट साइज़ तस्वीर अलग से भेजें। रचना के साथ अप्रकाशित और मौलिक होने का प्रमाणपत्र भी संलग्न करें।
9. रपट, रचना, समाचार के साथ के फोटो 250px तक होनी चाहिए।
10. 'विश्वा' के लिए भेजी गई रचना दो महिने तक कहीं न भेजें।
11. इंटरनेट की सुविधा का दुरुपयोग करते हुए एक ही रचना पचासों पत्रिकाओं में भेजकर अपनी और हमारी प्रतिबद्धता को सस्ता न बनाएँ।
12. प्रवासी अपने यहाँ की किसी व्यक्तिगत उपलब्धि तथा सांस्कृतिक, साहित्यिक और सामाजिक हलचलों की सचित्र-प्रामाणिक जानकारियाँ उचित तरीके से भेज सकते हैं।
13. यदि छंद का ज्ञान नहीं है तो कोई बात नहीं लेकिन यदि छंद में लिखें तो उसके अनुशासन का पूरा पालन करें।
14. हिन्दी से इतर भाषाओं के जीवन मूल्यों और मानवीय गरिमा से संपन्न रचनाओं का अनुवाद भी भेज सकते हैं। ऐसे में जहाँ मूल लेखक से अनुमति आवश्यक हो तो वह भी संलग्न करें।
15. पुस्तक की समीक्षा के लिए दो प्रतियाँ भेजें। हस्तलिखित, स्केनिंग और पीडीएॅफ़ वाली सामग्री का उपयोग हम नहीं कर सकेंगे।
16. किसी भी रचना पर किसी प्रकार के मानदेय का कोई प्रावधान नहीं है।

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनका अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की रीति-नीति से कोई संबंध नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति

International Hindi Association

संस्थापक – डॉ. कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह
Founder – Dr. Kunwar Chandraprakash Singh

बोर्ड के सदस्य / Board of Trustees

श्री तरुण सुरती (TN) अध्यक्ष, न्यासी समिति
Mr. Tarun Surti, Chairman 615-812-6164 tarunsurti@yahoo.com

श्री आलोक मिश्र (NH)
Mr. Alok Misra 603-681-9150 alok.iha@gmail.com

डॉ. रवि प्रकाश सिंह (TN)
Dr. Ravi Prakash Singh 615-785-7888 ngdsdg@gmail.com

श्री स्वप्न धैर्यवान (TX)
Mr. Swapan Dhairyawan 281-382-0348 swapandha@yahoo.com

श्री इंद्रजीत शर्मा (NY)
Mr. Inderjeet Sharma 917-273-9744 guru.richmondhill@gmail.com

कार्याधिकारी / Executive Officers

श्री संजीव जायसवाल (TX) अध्यक्ष
Mr. Sanjeev Jaiswal, President 508-369-7639 president@hindi.org

श्री उमेश कुमार सचिव
Mr. Umesh Kumar (TN) Secretary 615-870-7088 secretary@hindi.org

श्री चन्द्रकांत पटेल (TX) कोषाध्यक्ष
Mr. Chandrakant Patel, Treasurer 832-423-7979 treasurer@hindi.org

कार्यकारी समितियाँ Committees Chairs

प्रौद्योगिकी / Technology

श्री उमेश कुमार
Mr. Umesh Kumar (TN) 615-870-7088 umeshkharwar79@gmail.com

हिन्दी शिक्षण / Hindi Education

श्रीमती किरण खेतान
Mrs. Kiran Khaitan (OH) 330-622-1377 kirankhaitan@yahoo.com

निधि संग्रह / Fundraising

डॉ. शोभा खंडेलवाल
Dr. Shobha Khandelwal (OH) 330-421-6638 shobhakhandelwal@gmail.com

शाखा समन्वय / Chapter coordination

श्रीमती अनीता सिंघल
Mrs. Anita Singhal (TX) 817-319-2678 anitagsinghal@gmail.com

सदस्यता / Membership

चौधरी प्रताप सिंह
Choudhari Pratap Singh (MD) 202-413-5918 chpratapsingh1008@gmail.com

विश्वा / श्री रमेश जोशी
Vishwa / Mr. Ramesh Joshi (India) 91-94601-55700 joshikavirai@gmail.com

संवाद / डॉ. शैल जैन
Samvad Newsletter / Dr. Shail Jain 330-421-7528 shailj53@hotmail.com

शाखा संयोजक, Chapter Presidents USA

श्रीमती सुषमा कौशिक
Mrs. Sushma Kaushik New York 516-707-3796 seabreej1916@hotmail.com

डॉ. राकेश रंजन
Dr. Rakesh Ranjan NE Ohio 216-870-4375 rranjan@charakresearch.com

श्रीमती वीणा शर्मा
Mrs. Veena Sharma Dallas, TX 214-455-6592 mohan_veena@yahoo.com

श्री सौंदर्य (संजय) सोहोनी
Mr. Saundarya Sohoni Houston 281-943-9758 saundaryasohoni@gmail.com

सुश्री सीमा वर्मा
Ms Seema Verma Nashville, TN 904-525-1795 call.seema@gmail.com

चौधरी प्रताप सिंह
Choudhary Pratap Singh MD 202-413-5918 chpratapsingh1008@gmail.com

डॉ. बबिता श्रीवास्तव
Dr. Babita Srivastava New Jersey, NJ 908-892-6133srivastava.babita@yahoo.com

श्री विरेश सिंह
Mr. Viresh Singh Philadelphia, PA 484-425-7734 vireshsingh999@gmail.com

श्री आदित्य शाही
Mr. Aditya Shahi Indiana 818-359-9234 ihaindiana@gmail.com

सुश्री प्रिया भारद्वाज
Ms. Priya Bhardwaj Charlotte 919-995-2637 bharadwajpriya166@gmail.com

शाखा संयोजक, Chapter Presidents India

श्रीमती मुन्ना जगेतिया Hyderabad
Mrs. Munna Jagetia A.P., Telangana 91-94901-89715 munnaop@gmail.com

डॉ. मनमोहन शुक्ला
Dr. Manmohan Shukla Prayagraj, UP 91-83407-10237 shukla.mm.147@gmail.com

डॉ. शोभारानी सिंह Bihar
Dr. Shobharani Singh Jharkhand 91-99393-92605 drshobharani.vama@gmail.com

श्री अशोक लव
Mr. Ashok 'Lav' Delhi, NCR 91-89206-08821 kumar1641@gmail.com

डॉ.(प्रो.) ओम प्रकाश तिवारी
Dr. (Prof.) Om Prakash Tiwari Maharastra 91-96511-23803 optiwari9651@gmail.com

मुद्रण एवं प्रस्तुति :

अनुज्ञा बुक्स

(पुस्तक प्रकाशक, विक्रेता और मुद्रक)

1/10206, LANE NO. 1E, WEST GORAKH PARK, SHAHDARA, DELHI-110032

CELL/WhatsApp 07291920186, 09350809192 • e-mail: anuugyabooks@gmail.com

salesanuugyabooks@gmail.com • www: anuugyabooks.com

अनुक्रम

सम्पादकीय

5 कांड नहीं, कर्म
रमेश जोशी

स्थायी स्तम्भ

6 विशेष – राष्ट्रीयता
गणेश शंकर विद्यार्थी

7 भारत की खोज–पं. नेहरू
संक्षेप– *डॉ. निर्मला जैन*

11 विशिष्ट शृंखला : ज्ञानपीठ पुरस्कार 1988
डॉ. सिंगिरेड्डी नारायण रेड्डी
प्रस्तुति : *डॉ. दीपक पाण्डेय*

13 इतिहास रचती आवाज़ें – बेगम समरू
पूर्वा भारद्वाज

आलेख

15 विचार – इतिहास और सिनेमा के अंतर्संबंध
प्रो. मनोज कुमार झा

16 भारतीय वैदिक सभ्यता का डीएनए
ओंकारेश्वर

18 विचार –आधुनिक और प्रगतिशील होना क्या है?
मुशर्रफ़ अली

20 सरोकार – जब सभी बोल रहे हैं तो सुन कौन रहा है ?
डॉ. दुर्गा प्रसाद प्रसाद

22 हमारे समय का नालंदा
खुदाबख्श प्राच्य सार्वजनिक पुस्तकालय

23 वे दिन : वे लोग
गांधी और परचूरे शास्त्री

25 कहानी – काठ के पुतले
प्रज्ञा

33 उत्तरकथा – गोदान की संतानें
रवीन्द्र कुमार

37 आने वाले कल की कहानी – डेटा नॉट फाउंड
विजयशंकर चतुर्वेदी

42 पेड़ की बात
डॉ. जगदीश चंद्र बसु

43 ललित निबंध – धान का मौसम : मेहमान का मौसम
कृष्णप्रताप सिंह

45 हिन्दी पत्रकारिता के कुछ महत्वपूर्ण पड़ाव –
सच से भय खाती हैं अनैतिक सत्ताएँ
विजयदत्त श्रीधर

कविताएँ

19 एक आम आदमी की प्रार्थना
संजय कुंदन

21 मुकेश कुमार की कविताएँ

24 एक गीत : फूलों का व्यापार
नौशा असरार

41 जेन जी के लिए कविताएँ
शैलेन्द्र चौहान

विविध

10 जिजीविषा – बिना हाथों के भी पैरों से कर दिया कमाल
प्राची रतूड़ी मिश्र

12 कार्टून कोना

14 श्रद्धांजलि
पंडवानी गायिका पद्मभूषण तीजन बाई
डॉ. अनूप कपूर
डॉ. सुमन वरदान / 24

21 इस अंक का मुखपृष्ठ – तंजावूर शैली में अष्टलक्ष्मी

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति

International Hindi Association

A 501(c)(3) Non-profit Organization ● 2129 Stratford Road, Murfreesboro, TN 37129, U.S.A. ● Founded in 1980
www.hindi.org

MEMBERSHIP FORM

Please fill out all questions on the form clearly, sign, and return it via email to: **treasurer@hindi.org**, or via mail to: Treasurer, 5907 Majestic Pines Dr, Kingwood, TX 77345, USA. You may print the form, sign, and email a camera image.

Membership fee is nonrefundable. Associate Life members enjoy same benefits as regular Life members, except for voting rights. All members get: 1) Digital Vishwa magazine quarterly, and Samvad newsletter monthly. 2) Discounts on IHA products, services, and events. 3) Volunteer opportunities in US and India. 4) Early notifications.

Title: ☐Mr. ☐Mrs. ☐Ms. ☐Dr. ☐Prof. **Date:** ____________________

First Name: ____________________ **Last Name:** ____________________

Email ID: ____________________ **Mobile Number:** ____________________

Street Address: ____

City: ____________________ **State:** ____________________

Postal Code: ____________________ **Country:** ____________________

Spouse's Name: (optional) ……………………………………………………………………………………..

Membership: Select one ☐ Life Member $250 USD ☐ Associate Life Member $150 USD
☐ Annual Member $35 USD ☐ Institutional Annual Member $75 USD

Please make check payable to 'International Hindi Association' in USD and mail to above-mentioned address. *Or* ***Pay Online***

Do you wish to receive paper copy of Vishwa magazine, please check here: ☐

There could be a (USD $15/year) printing & mailing charge in the future.

Specimen Signature:
Print or Insert photo of your Signature

Would you like to be a part of the Leadership Team and volunteer in your area of interest or expertise ?

(Check all that apply)

- ☐ Hindi/English Content Writing
- ☐ Information Technology, Website
- ☐ Social media, Digital Marketing
- ☐ Fundraising, Sponsorships
- ☐ Public/Government Relations
- ☐ Hindi Education
- ☐ Graphics, Video
- ☐ Organization
- ☐ Legal, Compliance
- ☐ Sales, Support
- ☐ Other (please specify): ________________________________

'Vishwa' welcomes original writings in Hindi from all quarters. Writings dealing with immigrant experiences are especially welcome. For further information, or to submit your writings for consideration, please contact: The Editor, Mr. Ramesh Joshi, Phone USA +1 (330) 688-4927, India +91 94601 55700; Email: joshikavirai@gmail.com or editor@hindi.org

सम्पादकीय

कांड नहीं, कर्म

आज जब धर्म के नाम पर ढोंग, स्वार्थ सिद्धि और कुकर्मों को छुपाने का उपक्रम किया जा रहा है तो धर्म के सत्य लेकर सामान्य जन के मन में भ्रम पैदा हो रहा है। वह बाह्य कर्मकांडों को ही धर्म समझने लगता है। ऐसे में यह एक समाचार उल्लेखनीय है।

फरीदाबाद के एल आई सी एजेंट अशोक शर्मा को जनवरी 2025 में अपने परिवार सहित कुम्भ स्नान के लिए जाना था। कुम्भ की भीड़-भगदड़ में छीनाझपटी का डर तो पीछे से चोरी का। इसलिए सुरक्षा की दृष्टि से परंपरागत तरीका अपनाया गया। घर के फालतू सामान में एक बोरी में अन्य कबाड़ के साथ सोने के लगभग एक सौ ग्राम के गहने रख कर मेले में चले गए।

कुम्भ-स्नान से लौट आने के बाद संयोग से इस तरफ ध्यान नहीं गया और दिवाली की सफाई के लिए अन्य फालतू समान-कबाड़ के साथ उस बोरे को भी गहने सहित कबाड़ी को बेच दिया गया।

बाद में जब शर्मा परिवार को लापरवाही का अहसास हुआ तो वे संबंधित कबाड़ी के पास गए लेकिन वह डिब्बा नहीं मिला क्योंकि कबाड़ी को भी इसका कुछ पता नहीं था। कोई चार महीने बाद उस कबाड़ी ने जब स्क्रेप की छँटाई की तो उसे गहनों का डिब्बा मिला।

कबाड़ी वह डिब्बा लेकर पुलिस कार्यालय में गया जहां वह डिब्बा एसीपी बल्लभगढ़ की उपस्थिति में अशोक शर्मा के परिवार को लौटा दिया गया।

जब एक पत्रकार के कबाड़ी हाजी अख्तर खान से पूछा कि सोना मिलते ही सबसे पहले उनके दिल में क्या खयाल आया?

हाजी ने तत्काल जवाब दिया– ईमान।

ईमान। इसे आप धर्म भी कह सकते हैं।

लेकिन वह धर्म नहीं जिसके लक्षण किसी खास पहनावे, चिह्न या स्थान से तय होते हैं। यह वह धर्म है जो आपके आचरण से तय होता है। जिसके दस लक्षण शास्त्रों ने बताए हैं–

मनुस्मृति के अनुसार

धृति (धैर्य), क्षमा (अपना अपकार करने वाले का भी उपकार करना), दम (हमेशा संयम से धर्म में लगे रहना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (भीतर और बाहर की पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को हमेशा धर्माचरण में लगाना), धी (सत्कर्मों से बुद्धि को बढ़ाना), विद्या (यथार्थ ज्ञान लेना). सत्यम (हमेशा सत्य का आचरण करना) और अक्रोध (क्रोध को छोड़कर हमेशा शांत रहना)।

याज्ञवल्क्य के अनुसार

(अहिंसा, सत्य, चोरी न करना (अस्तेय), शौच (स्वच्छता), इन्द्रियनिग्रह (इन्द्रियों को वश में रखना), दान, संयम (दम), दया एवं शान्ति)

विदुर ने धर्म के 8 अंग बताए हैं– इज्या (यज्ञ-याग, पूजा आदि), अध्ययन, दान, तप, सत्य, दया, क्षमा और अलोभ।

उन का कहना है कि इन में से प्रथम चार इज्या आदि अंगों का आचरण मात्र दिखावे के लिए भी हो सकता है, किन्तु अन्तिम चार सत्य आदि अंगों का आचरण करने वाला महान् बन जाता है।

यहाँ विदुर कर्मकांड में छुपे आडंबर की ओर संकेत कर रहे हैं जो कि आजकल धर्म के नाम पर बहुत प्रबल हो रहा है।

ईसाई धर्म में

गरीबों, बीमारों, और जरूरतमंदों की मदद करना, दूसरों को क्षमा करना सच्चा धर्म माना गया है। जो आप अपने लिए अच्छा नहीं समझते वैसा दूसरों के साथ न करें।

जैन धर्म के पाँच महाव्रत

अहिंसा: मन, वचन और कर्म से किसी भी जीव को चोट न पहुँचाना (अहिंसा परमो धर्म)।

1. सत्य : हमेशा सच और प्रिय बोलना।

2. अस्तेय : चोरी न करना या बिना आज्ञा कोई वस्तु न लेना।

3. ब्रह्मचर्य : इंद्रियों पर नियंत्रण रखना और वासना से दूर रहना।

4. अपरिग्रह : आवश्यकता से अधिक धन या वस्तुओं का संचय न करना।

यहूदी धर्म के दस लक्षणों में एक ईश्वर की पूजा करना, माता-पिता का सम्मान करना, हत्या और चोरी न करना, झूठ न बोलना आदि शामिल हैं।

इस्लाम में भी सूद (ब्याज) का लेन-देन, रिश्वत, चोरी, जुआ, और धोखाधड़ी या बेईमानी से कमाया गया धन हराम माना गया है।

इस प्रकार सभी धर्मों में नैतिक आचरण और ईमानदारी को बहुत महत्व दिया गया है। अगर हम धार्मिक हैं तो निश्चित ही हम एक अच्छे, दयालु, विनम्र और ईमानदार व्यक्ति होंगे।

इसलिए कर्मकांड की बजाय कर्म (अच्छे आचरण) पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

–रमेश जोशी

राष्ट्रीयता

गणेश शंकर विद्यार्थी

(26 अक्टूबर 1890 – 25 मार्च 1931)

देश में कहीं-कहीं राष्ट्रीयता के भाव को समझने में गहरी और भद्दी भूल की जा रही है। आये दिन हम इस भूल के अनेकों प्रमाण पाते हैं। यदि इस भाव के अर्थ भली-भाँति समझ लिये गये होते तो इस विषय में बहुत-सी अनर्गल और अस्पष्ट बातें सुनने में न आतीं। राष्ट्रीयता जातीयता नहीं है। राष्ट्रीयता धार्मिक सिद्धांतों का दायरा नहीं है। राष्ट्रीयता सामाजिक बंधनों का घेरा नहीं है। राष्ट्रीयता का जन्म देश के स्वरूप से होता है। उसकी सीमाएँ देश की सीमाएँ हैं। प्राकृतिक विशेषता और भिन्नता देश को संसार से अलग और स्पष्ट करती है और उसके निवासियों को एक विशेष बंधन-किसी सादृश्य के बंधन-से बाँधती है। राष्ट्र पराधीनता के पालने में नहीं पलता। स्वाधीन देश ही राष्टों की भूमि है, क्योंकि पुच्छ-विहीन पशु हों तो हों, परंतु अपना शासन अपने हाथों में न रखने वाले राष्ट्र नहीं होते। राष्ट्रीयता का भाव मानव-उन्नति की एक सीढ़ी है। उसका उदय नितांत स्वाभाविक रीति से हुआ। योरप के देशों में यह सबसे पहले जन्मा। मनुष्य उसी समय तक मनुष्य है, जब तक उसकी दृष्टि के सामने कोई ऐसा ऊँचा आदर्श है, जिसके लिए वह अपने प्राण तक दे सके। समय की गति के साथ आदर्शों में परिवर्तन हुए। धर्म के आदर्श के लिए लोगों ने जान दी और तन कटाया। परंतु संसार के भिन्न-भिन्न धर्मों के संघर्षण, एक-एक देश में अनेक धर्मों के होने तथा धार्मिक भावों की प्रधानता से देश के व्यापार, कला-कौशल और सभ्यता की उन्नति में रुकावट पड़ने से, अंत में धीरे-धीरे धर्म का पक्षपात कम हो चला और लोगों के सामने देश-प्रेम का स्वाभाविक आदर्श सामने आ गया। जो प्राचीन काल में धर्म के नाम पर कटते-मरते थे, आज उनकी संतति देश के नाम पर मरती है। पुराने अच्छे थे या ये नये, इस पर बहस करना फिजूल ही है, पर उनमें भी जीवन था और इनमें भी जीवन है। वे भी त्याग करना जानते थे और ये भी और ये दोनों उन अभागों से लाख दर्जे अच्छे और सौभाग्यवान हैं जिनके सामने कोई आदर्श नहीं और जो हर बात में मौत से डरते हैं। ये पिछले आदमी अपने देश के बोझ और अपनी माता की कोख के कलंक हैं। देश-प्रेम का भाव इंग्लैंड में उस समय उदय हो चुका था, जब स्पेन के कैथोलिक राजा फिलिप ने इंग्लैंड पर अजेय जहाजी बेड़े आरमेड़ा द्वारा चढ़ाई की थी, क्योंकि इंग्लैंड के कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट, दोनों प्रकार के ईसाइयों ने देश के शत्रु का एक-सा स्वागत किया। फ्रांस की राज्यक्रांति ने राष्ट्रीयता को पूरे वैभव से खिला दिया। इस प्रकाशमान रूप को देखकर गिरे हुए देशों को आशा का मधुर संदेश मिला। 19वीं शताब्दी राष्ट्रीयता की शताब्दी थी। वर्तमान जर्मनी का उदय इसी शताब्दी में हुआ। पराधीन इटली ने स्वेच्छाचारी आस्ट्रिया के बंधनों से मुक्ति पाई। यूनान को स्वाधीनता मिली और बालकन के अन्य राष्ट्र भी कब्रों से सिर निकाल कर उठ पड़े। गिरे हुए पूर्व ने भी अपने विभूति दिखाई। बाहर वाले उसे दोनों हाथों से लूट रहे थे। उसे चैतन्यता प्राप्त हुई। उसने अँगड़ाई ली और चोरों के कान खड़े हो गये। उसने संसार की गति की ओर दृष्टि फेरी। देखा, संसार को एक नया प्रकाश मिल गया है और जाना कि स्वार्थपरायणता के इस अंधकार को बिना उस प्रकाश के पार करना असंभव है। उसके मन में हिलोरें उठीं और अब हम उन हिलोरों के रत्न देख रहे हैं। जापान एक रत्न है– ऐसा चमकता हुआ कि राष्ट्रीयता उसे कहीं भी पेश कर सकती है। लहर रुकी नहीं। बढ़ी और खूब बढ़ी। अफीमची चीन को उसने जगाया और पराधीन भारत को उसने चेताया। फारस में उसने जागृति फैलाई और एशिया के जंगलों और खोहों तक में राष्ट्रीयता की प्रतिध्वनि इस समय किसी न किसी रूप में उसने पहुँचाई। यह संसार की लहर है। इसे रोका नहीं जा सकता। वे स्वेच्छाचारी अपने हाथ तोड़ लेंगे– जो उसे रोकेंगे और उन मुर्दों की खाक का भी पता नहीं लगेगा– जो इसके संदेश को नहीं सुनेंगे। भारत में हम राष्ट्रीयता की पुकार सुन चुके हैं। हमें भारत के उच्च और उज्ज्वल भविष्य का विश्वास है। हमें विश्वास है कि हमारी बाढ़ किसी के राके नहीं रुक सकती। रास्ते में रोकने वाली चट्टानें आ सकती हैं। बिना चट्टानें पानी की किसी बाढ़ को नहीं रोक सकतीं, परंतु एक बात है, हमें जान-बूझकर मूर्ख नहीं बनना चाहिए। ऊटपटाँग रास्ते नहीं नापने चाहिए। कुछ लोग 'हिंदू राष्ट्र'–'हिंदू राष्ट्र' चिल्लाते हैं। हमें क्षमा किया जाय, यदि हम कहें–नहीं, हम इस बात पर जोर दें– कि वे एक बड़ी भारी भूल कर रहे हैं और उन्होंने अभी तक 'राष्ट्र' शब्द के अर्थ ही नहीं समझे। हम भविष्यवक्ता नहीं, पर अवस्था हमसे कहती है कि अब संसार में 'हिंदू राष्ट्र' नहीं हो सकता, क्योंकि राष्ट्र का होना उसी समय संभव है, जब देश का शासन देशवालों के हाथ में हो और यदि मान लिया जाय कि आज भारत स्वाधीन हो जाये, या इंग्लैंड उसे औपनिवेशिक स्वराज्य दे दे, तो भी हिंदू ही भारतीय राष्ट्र के सब कुछ न होंगे और जो ऐसा समझते हैं– हृदय से या केवल लोगों को प्रसन्न करने के लिए– वे भूल कर रहे हैं और देश को हानि पहुँचा रहे हैं। वे लोग भी इसी प्रकार की भूलकर रहे हैं जो टर्की या काबुल, मक्का या जेद्दा का स्वप्न देखते हैं, क्योंकि वे उनकी जन्मभूमि नहीं और इसमें कुछ भी कटुता न समझी जानी चाहिए, यदि हम यह कहें कि उनकी कब्रें इसी देश में बनेंगी और उनके मरिसेये– यदि वे इस योग्य होंगे तो– इसी देश में गाये जाएँगे, परंतु हमारा प्रतिपक्षी, नहीं, राष्ट्रीयता का विपक्षी मुँह बिचका कर कह सकता है कि राष्ट्रीयता स्वार्थों की खान है। देख लो इस महायुद्ध को और इंकार करने का साहस करो कि संसार के राष्ट्र पक्के स्वार्थी नहीं है? हम इस विपक्षी का स्वागत करते हैं, परंतु संसार की किस वस्तु में बुराई और भलाई दोनों बातें नहीं हैं? लोहे से डॉक्टर का घाव चीरने वाला चाकू और रेल की पटरियाँ बनती हैं और इसी लोहे से हत्यारे का छुरा और लड़ाई की तोपें भी बनती हैं। सूर्य का प्रकाश फूलों को रंग-बिरंगा बनाता है पर वह बेचारा मुर्दा लाश का क्या करें, जो उसके लगते ही सड़कर बदबू देने लगती है। हम राष्ट्रीयता के अनुयायी हैं, पर वही हमारी सब कुछ नहीं, वह केवल हमारे देश की उन्नति का उपाय-भर है। •

भारत की खोज

डॉ. निर्मला जैन

(भारत एक संश्लिष्ट सांस्कृतिक इकाई के रूप में अत्यंत प्राचीन, जीवंत और गतिशील उपमहाद्वीप रहा है जिसने अपनी मेधा से विश्व को चमत्कृत और समृद्ध किया है। जहाँ तक राजनीति की बात है तो यहाँ अलग अलग क्षेत्रों में अलग अलग साम्राज्य रहे जिनका वैसा ही इतिहास रहा जैसा अलग अलग देशों का होता है– संघर्ष का, विमर्श का और सहयोग का। ब्रिटिश शासन काल में इसे एक राजनीतिक रूप से संगठित इकाई का स्वरूप मिला जिसे हम अपने देश भारत, हिंदुस्तान और इंडिया के नाम से जानते हैं। जो आज भी अपनी पुरातनता और नवीनता, एकता और अनेकता के अद्‌भुत संगम के कारण विश्व के लिए एक आश्चर्य है।

इसे समग्रता में देखना, समझना और समेटना सरल नहीं। इसकी सफल और प्रामाणिक कोशिश की पंडित जवाहरलाल नेहरू ने और नाम दिया– 'भारत की खोज'। इसका लेखन उन्होंने भारत के स्वाधीनता आँदोलन में अंग्रेज सरकार द्वारा अहमदनगर किले में जेल रखे जाने के दौरान किया। आज भी भारत को समझने के लिए यह पुस्तक विश्व में समादृत है।

सामान्य पाठकों विशेषकर किशोरों के लिए इसका सार्थक और सरल संक्षिप्तीकरण किया हिन्दी की वरिष्ठ समालोचक और साहित्यकार डॉ. निर्मला जैन ने। हम उनका आभार स्वीकार करते हुए इसे विश्वा के युवा पाठकों के लिए धारावाहिक रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। –सं.)

भारत का विदेशी व्यापार

ईसवी सन् के पहले एक हज़ार वर्षों के दौरान, भारत का व्यापार दूर-दूर तक फैला हुआ था और बहुत से विदेशी बाजारों पर भारतीय व्यापारियों का नियंत्रण था। पूर्वी समुद्र के देशों में तो उनका प्रभुत्व था ही, उधर वह भूमध्य सागर तक भी फैला हुआ था।

(कुतुब परिसर में लौहस्तम्भ : भारतीय धातु विज्ञान का चमत्कार)

महरौली (दिल्ली) में कुतुबमीनार के परिसर में खड़ा लौह-स्तंभ, जिसका निर्माण लगभग 1500 साल पहले हुआ

भारत में बहुत प्राचीन काल से कपड़े का उद्योग बहुत विकसित हो चुका था। भारतीय कपड़ा दूर-दूर के देशों में जाता था। रेशमी कपड़ा भी यहाँ काफ़ी समय से बनता रहा है। लेकिन वह शायद उतना अच्छा नहीं होता था जितना चीनी रेशम, जिसका आयात यहाँ ई.पू. चौथी शताब्दी से ही किया जाता था। भारतीय रेशम उद्योग ने बाद में विकास किया, लेकिन बहुत नहीं। कपड़े को रँगने की कला में उल्लेखनीय प्रगति हुई और पक्के रंग तैयार करने के खास तरीके खोज निकाले गए। इनमें से एक नील का रंग था, जिसे अंग्रेज़ी में 'इंडिगो' कहते हैं। यह शब्द इंडिया से बना है और अंग्रेज़ी में यूनान के माध्यम से आया है।

ईसवी सन् की आरंभिक शताब्दियों में भारत में रसायनशास्त्र का विकास और देशों की तुलना में शायद अधिक हुआ था। भारतीय प्राचीन काल से ही फ़ौलाद को ताव देना जानते थे। भारतीय फ़ौलाद और लोहे की दूसरे देशों में बहुत कद्र की जाती थी, विशेष रूप से युद्ध के कामों में। भारतीयों को और बहुत सी धातुओं की भी जानकारी थी और उनका इस्तेमाल किया जाता था। औषधियों के लिए धातुओं के मिश्रण तैयार किए जाते थे। आसव और भस्म बनाना ये लोग खूब जानते थे। औषध-विज्ञान काफ़ी विकसित था। मध्य युग तक प्रयोगों में काफ़ी विकास किया जा चुका था, गरचे ये प्रयोग मुख्य रूप से प्राचीन ग्रंथों पर आधारित थे। शरीर रचना और शरीर-विज्ञान का अध्ययन किया जाता था और हार्वे से बहुत पहले रक्त संचार की बात सुझाई जा चुकी थी।

खगोलशास्त्र, जो विज्ञानों में प्राचीनतम है, विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम का नियमित विषय था और फलित ज्योतिष को इससे मिला दिया जाता था। एक निश्चित पंचांग भी तैयार किया गया था जो अब भी प्रचलित है। जो लोग समुद्री यात्रा पर निकलते थे, उनके लिए खगोलशास्त्र का ज्ञान व्यावहारिक दृष्टि से बहुत सहायक होता था।

यह कहना कठिन है कि उस समय तक यंत्रों ने कितनी प्रगति की थी, लेकिन जहाज़ बनाने का उद्योग खूब चलता था। इसके अलावा, विशेष रूप से युद्ध में काम आने वाली तरह-तरह की मशीनों के हवाले भी मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय भारत औज़ारों के निर्माण एवं प्रयोग में और रसायनशास्त्र एवं धातुशास्त्र संबंधी जानकारी में किसी देश से पीछे नहीं था। इसी कारण कई सदियों तक वह कई विदेशी मंडियों को अपने वश में रख सका।

प्राचीन भारत में गणितशास्त्र

यह माना जाता है कि आधुनिक अंकगणित और बीजगणित की नींव भारत में ही पड़ी थी। गिनती के चौखटे को इस्तेमाल करने की फूहड़ पद्धति, रोमन और उसी तरह की संख्याओं के इस्तेमाल ने बहुत

समय तक प्रगति में बाधा दी, जबकि शून्यांक मिलाकर दस भारतीय संख्याओं ने मनुष्य की बुद्धि को इन बाधाओं से बहुत पहले मुक्त कर दिया था और अंकों के व्यवहार पर अत्यधिक प्रकाश डाला था। ये अंक चिह्न बेजोड़ थे और दूसरे देशों में प्रयोग किए जाने वाले तमाम चिह्नों से एकदम भिन्न थे।

(गणित में क्रांति के जनक आर्यभट्ट 476-550 ई. की मूर्ति)

भारत में ज्यामिति, अंकगणित और बीजगणित का आरंभ बहुत प्राचीन काल में हुआ था। शायद आरंभ में वैदिक वेदियों पर आकृतियाँ बनाने के लिए एक तरह के ज्यामितीय बीजगणित का प्रयोग किया जाता था। हिंदू संस्कारों में ज्यामितिक आकृतियाँ अब भी आमतौर पर काम में लाई जाती हैं। भारत में ज्यामिति का विकास अवश्य हुआ पर इस क्षेत्र में यूनान और सिकंदरिया आगे बढ़ गए। अंकगणित और बीजगणित में भारत आगे बना रहा। जिसे 'शून्य' या 'कुछ नहीं' कहा जाता है वह आरंभ में एक बिंदी या नुक्ते की तरह था। बाद में उसने एक छोटे वृत्त का रूप धारण कर लिया। उसे किसी भी और अंक की तरह एक अंक समझा जाता था।

शून्यांक और स्थान-मूल्य वाली दशमलव विधि को स्वीकार करने के बाद अंकगणित और बीजगणित में तेजी से विकास करने की दिशा में कपाट खुल गए। बीजगणित पर सबसे प्राचीन ग्रंथ ज्योतिर्विद आर्यभट्ट का है, जिनका जन्म 427 ई. में हुआ था। भारतीय गणितशास्त्र में अगला महत्त्वपूर्ण नाम भास्कर (522 ई.) का और उसके बाद ब्रह्मपुत्र (628 ई.) का है। ब्रह्मपुत्र प्रसिद्ध खगोलशास्त्री भी था जिसने शून्य पर लागू होने वाले नियम निश्चित किए और इस क्षेत्र में और अधिक उल्लेखनीय प्रगति की। इसके बाद अंकगणित और बीजगणित पर लिखने वाले गणितज्ञों की परंपरा मिलती है। इनमें अंतिम महान नाम भास्कर द्वितीय का है, जिसका जन्म 1114 ई. में हुआ था। उसने खगोलशास्त्र, बीजगणित और अंकगणित पर क्रमशः तीन ग्रंथों की रचना की। अंकगणित पर उनकी पुस्तक का नाम लीलावती है, जो स्त्री का नाम होने के कारण गणित की पुस्तक के लिए विचित्र लगता है। विश्वास किया जाता है कि लीलावती भास्कर की पुत्री थी गोकि इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। पुस्तक की शैली सरल और स्पष्ट है और छोटी उम्र के लोगों की समझ के लिए उपयुक्त है। इस पुस्तक का संस्कृत विद्यालयों में अब भी कुछ हद तक अपनी शैली के कारण इस्तेमाल किया जाता है।

आठवीं शताब्दी में खलीफ़ा अल्मंसूर के राज्यकाल में (753-774 ई.) कई भारतीय विद्वान बगदाद गए और अपने साथ वे जिन पुस्तकों को ले गए उनमें खगोलशास्त्र और गणित की पुस्तकें थीं। इन्होंने अरबी जगत में गणितशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र के विकास को प्रभावित किया और वहाँ भारतीय अंक प्रचलित हुए। बगदाद उस समय विद्याध्ययन का बड़ा केंद्र था और यूनानी और यहूदी विद्वान वहाँ एकत्र होकर अपने साथ यूनानी दर्शन, ज्यामिति और विज्ञान ले गए थे। मध्य एशिया से स्पेन तक सारी इस्लामी दुनिया पर बगदाद का सांस्कृतिक प्रभाव महसूस किया जा रहा था और अरबी अनुवादों के माध्यम से भारतीय गणित का ज्ञान इस व्यापक क्षेत्र में फैल गया था।

अरबी जगत से यह नया गणित, संभवतः स्पेन के मूर विश्वविद्यालयों के माध्यम से यूरोपीय देशों में पहुँचा और इससे यूरोपीय गणित की नींव पड़ी। यूरोप में इन नए अंकों का विरोध हुआ और इनके आमतौर पर प्रचलन में कई सौ वर्ष लग गए। इनका सबसे पहला प्रयोग, जिसकी जानकारी मिलती है, 1134 ई. में सिसली के एक सिक्के में हुआ। ब्रिटेन में इसका पहला प्रयोग 1490 ई. में हुआ।

विकास और ह्रास

ईसवी सन् के पहले हज़ार वर्षों में, भारत में आक्रमणकारी तत्वों और आंतरिक झगड़ों के कारण बहुत उतार-चढ़ाव आए। फिर भी यह समय ऊर्जा से उफनता और सभी दिशाओं में अपना प्रसार करते हुए कर्मठ राष्ट्रीय जीवन का समय रहा है। ईरान, चीन, यूनानी जगत, मध्य एशिया से उसका संपर्क बढ़ता है और इस सबसे बढ़कर पूर्वी समुद्रों की ओर बढ़ने की शक्तिशाली प्रेरणा पैदा होती है। परिणामस्वरूप भारतीय उपनिवेशों की स्थापना और भारतीय सीमाओं को पार कर दूर-दूर तक भारतीय संस्कृति का प्रसार होता है। इन हज़ार वर्षों के बीच के समय में यानी चौथी शताब्दी के आरंभ से लेकर छठी शताब्दी तक गुप्त साम्राज्य समृद्ध होता है। यह भारत का स्वर्ण युग कहलाता है। इस युग के संस्कृत साहित्य में एक प्रकार की प्रशांति, आत्मविश्वास और आत्माभिमान की दीप्ति और उमंग दिखाई पड़ती है।

स्वर्ण-युग के समाप्त होने से पहले ही कमज़ोरी और ह्रास के लक्षण भी प्रकट होने लगते हैं। उत्तर-पश्चिम से गोरे हूणों के दल के दल आते हैं और बार-बार वापस खदेड़ दिए जाते हैं। किंतु धीरे-धीरे वे उत्तर- भारत में अपनी राह बना लेते हैं और आधी शताब्दी तक पूरे उत्तर में अपने को राज-सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित कर लेते हैं। इसके बाद, अंतिम गुप्त सम्राट मध्य-भारत के एक शासक यशोवर्मन के साथ मिलकर, बहुत प्रयत्न करके हूणों को निकाल बाहर करता है।

इस लंबे संघर्ष ने भारत को राजनीतिक और सैनिक दोनों दृष्टियों से दुर्बल बना दिया। हूणों के उत्तर भारत में बस जाने के कारण लोगों में धीरे-धीरे एक अंदरूनी परिवर्तन घटित हुआ। हूणों के पुराने वृत्तांत कठोरता और बर्बर व्यवहार से भरे पड़े हैं। ऐसा व्यवहार जो युद्ध और शासन के भारतीय आदर्शों से एकदम भिन्न हैं।

सातवीं शताब्दी में हर्ष के शासनकाल में उज्जयिनी (आधुनिक उज्जैन), जो गुप्त शासकों की शानदार राजधानी थी, फिर से कला, संस्कृति और एक शक्तिशाली साम्राज्य का केंद्र बनती है। लेकिन आने वाली सदियों में वह भी कमज़ोर पड़कर धीरे-धीरे खत्म हो जाती है। नौवीं शताब्दी में गुजरात का मिहिर भोज उत्तर और मध्य भारत में छोटे राज्यों को मिलाकर एक संयुक्त राज्य कायम करके कन्नौज को अपनी राजधानी बनाता है। एक बार फिर साहित्यिक पुनर्जागरण होता है जिसके प्रमुख व्यक्तित्व राजशेखर हैं। ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ में एक बार फिर एक दूसरा भोज सामने आता है जो बहुत पराक्रमी और आकर्षक है और उज्जयिनी फिर एक बड़ी राजधानी बनती है। यह भोज बड़ा अद्भुत व्यक्ति था जिसने अनेक क्षेत्रों में प्रतिष्ठा हासिल की। वह वैयाकरण और कोशकार था। साथ ही उसकी दिलचस्पी भेषज और खगोलशास्त्र में थी। उसने इमारतों का निर्माण कराया और कला एवं साहित्य का संरक्षण किया। वह स्वयं कवि और लेखक था जिसके नाम से कई रचनाएँ मिलती हैं। उसका नाम महानता, विद्वत्ता और उदारता के प्रतीक के रूप में लोक-कथाओं और किस्सों का हिस्सा बन गया है।

इन तमाम चमकदार टुकड़ों के बावजूद एक भीतरी कमज़ोरी ने भारत को जकड़ रखा है, जिससे उसकी राजनीतिक प्रतिष्ठा ही नहीं, बल्कि उसके रचनात्मक क्रियाकलाप भी प्रभावित होते दिखाई पड़ते हैं। यह प्रक्रिया बहुत धीमी गति से चलती रही और इसने दक्षिण भारत की तुलना में उत्तर भारत को जल्द प्रभावित किया। वस्तुतः दक्षिण, आक्रमणकारियों के लगातार हमलों का मुकाबला करने के दबाव से बचा रहा। उत्तर भारत की अनिश्चित स्थिति से बचाव के लिए बहुत से लेखक, कलाकार और वास्तुशिल्पी दक्षिण में जाकर बस गए। दक्षिण के शक्तिशाली राज्यों ने इन लोगों को रचनात्मक कार्य के लिए ऐसा अवसर दिया होगा जो उन्हें दूसरी जगह नहीं मिला।

गरचे उत्तरी भारत छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था, पर जीवन वहाँ समृद्ध था और वहाँ कई केंद्र सांस्कृतिक और दार्शनिक दृष्टि से सक्रिय थे। हमेशा की तरह बनारस धार्मिक और दार्शनिक विचारों का गढ़ था। लंबे समय तक कश्मीर भी बौद्धों और ब्राह्मणों के संस्कृत - ज्ञान का बहुत बड़ा केंद्र रहा। भारत में बड़े- बड़े विश्वविद्यालय रहे। इनमें सबसे प्रसिद्ध नालंदा था, जिसके विद्वानों का पूरे भारत में आदर किया जाता था। यहाँ चीन, जापान और तिब्बत से विद्यार्थी आते थे, बल्कि कोरिया, मंगोलिया और बुखारा से भी। धार्मिक और दार्शनिक विषयों (बौद्ध और ब्राह्मण दोनों के अनुसार) के अलावा दूसरे विषयों की शिक्षा भी दी जाती थी। कला और वास्तुशिल्प के विभाग थे, वैद्यक का विद्यालय था, कृषि विभाग था, डेरी फार्म था और पशु थे। विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रसार ज्यादातर नालंदा के विद्वानों ने किया है।

इसके अलावा बिहार में आजकल के भागलपुर के पास विक्रमशिला और काठियावाड़ में वल्लभी विश्वविद्यालय थे। गुप्त शासकों के समय में उज्जयिनी विश्वविद्यालय का उत्कर्ष हुआ। दक्षिण में अमरावती विश्वविद्यालय था।

ज्यों-ज्यों सहस्राब्दी समाप्ति पर आती है यह सब सभ्यता के तीसरे पहर जैसा लगने लगता है। दक्षिण में अब भी तेजस्विता और शक्ति शेष थी और वह कुछ और शताब्दियों तक बनी रही। पर ऐसा लगता था जैसे हृदय स्तंभित हो चला हो, उनकी धड़कनें मंद होने लगी हों। आठवीं शताब्दी में शंकर के बाद कोई महान दार्शनिक नहीं हुआ। शंकर भी दक्षिण भारतीय थे। ब्राह्मण और बौद्ध दोनों धर्मों का ह्रास होने लगता है और पूजा के विकृत रूप सामने आने लगते हैं, विशेषकर तांत्रिक पूजा और योग-पद्धति के भ्रष्ट रूप।

साहित्य में भवभूति (आठवीं शताब्दी) आखिरी बड़ा व्यक्ति था। गणित में आखिरी बड़ा नाम भास्कर द्वितीय (बारहवीं शताब्दी) का है। कला में ई. वी. हैवेल के अनुसार सातवीं या आठवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक भारतीय कला का महान युग था। यही समय यूरोप में गाथिक कला के चरम विकास का समय था। प्राचीन भारतीय कला की रचनात्मक प्रवृत्ति का ह्रास स्पष्ट रूप से सोलहवीं शताब्दी में होने लगा। मेरा खयाल है कला के क्षेत्र में भी उत्तर की अपेक्षा दक्षिण भारत में ही पुरानी परंपरा ज्यादा लंबे समय तक कायम रही।

उपनिवेशों में बसने के लिए आखिरी बड़ा दल दक्षिण से नवीं शताब्दी में गया था, लेकिन दक्षिण के चोलवंशी ग्यारहवीं शताब्दी में तब तक एक बड़ी समुद्री शक्ति बने रहे जब तक उन्हें श्रीविजय ने परास्त करके उन पर विजय नहीं प्राप्त कर ली।

समय के साथ भारत क्रमशः अपनी प्रतिभा और जीवन-शक्ति को खोता जा रहा था। यह प्रक्रिया बहुत धीमी थी और कई सदियों तक चलती रही। इसका आरंभ उत्तर में हुआ और अंत में यह दक्षिण पहुँच गई। इस राजनीतिक पतन और सांस्कृतिक गतिरोध के कारण क्या थे? राधाकृष्णन का कहना है कि भारतीय दर्शन ने अपनी शक्ति राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ खो दी।

यह सही है कि राजनीतिक स्वतंत्रता खो जाने से सांस्कृतिक ह्रास अनिवार्य रूप से शुरू हो जाता है। लेकिन राजनीतिक स्वतंत्रता तभी छिनती है जब उससे पहले किसी तरह का ह्रास शुरू हो जाता है। भारत जैसा विशाल, अति विकसित और अत्यंत सभ्य देश बाह्य आक्रमण के सामने तभी हार मानेगा जब या तो भीतर से खुद पतनशील हो या आक्रमणकारी युद्धकौशल में उससे आगे हो। भीतरी ह्रास भारत में इन हज़ार वर्षों के अंत में बिलकुल स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

हर सभ्यता के जीवन में ह्रास और विघटन के दौर बार-बार आते हैं पर भारत ने उनसे बचकर नए सिरे से अपना कायाकल्प कर लिया। उसमें एक ऐसा सक्रिय अंतस्तल रहा जो नए संपर्कों से अपने को हमेशा ताज़ा रूप देकर फिर से अपना विकास करता रहा- कुछ इस रूप में कि अतीत से भिन्न होकर भी उसके साथ गहरा संबंध बना रहा। भारत में हमेशा से व्यवहार में रूढ़िवादिता और विचारों में विस्फोट का विचित्र संयोग रहा है।

सभ्यताओं के ध्वस्त होने के हमारे सामने बहुत से उदाहरण हैं। इनमें सबसे उल्लेखनीय उदाहरण यूरोप की प्राचीन सभ्यता का है जिसका अंत रोम है के पतन के साथ हुआ।

भारतीय सभ्यता का ऐसा नाटकीय अंत उस समय हुआ और न बाद में, किंतु उत्तरोत्तर पतन साफ़ दिखाई पड़ता है। शायद यह भारतीय समाज-व्यवस्था के बढ़ते हुए कट्टरपन और गैरमिलनसारी

का अनिवार्य परिणाम था जिसे यहाँ की जाति-व्यवस्था में देखा जा सकता है। जहाँ भारतीय विदेश चले गए, जैसे दक्षिण पूर्वी एशिया में, वहाँ उनकी मानसिकता, रीति-रिवाज और अर्थव्यवस्था किसी में इतना कट्टरपन दिखाई नहीं पड़ता। अगले चार-पाँच सौ वर्ष तक वे इन उपनिवेशों में फले-फूले और उन्होंने तेजस्विता और रचनात्मक शक्ति का परिचय दिया। स्वयं भारत में गैरमिलनसारी की भावना ने उनकी रचनात्मकता को नष्ट कर दिया। जीवन निश्चित चौखटों में बँट गया, जहाँ हर आदमी का धंधा स्थायी और नियत हो गया। देश की सुरक्षा के लिए युद्ध करना क्षत्रियों का काम हो गया। ब्राह्मण और क्षत्रिय वाणिज्य-व्यापार को नीची नज़र से देखते थे। नीची जाति वालों को शिक्षा और विकास के अवसरों से वंचित रखा गया और उन्हें अपने से ऊँची जाति के लोगों के अधीन रहना सिखाया गया।

भारत के सामाजिक ढाँचे ने भारतीय सभ्यता को अद्भुत दृढ़ता दी थी। उसने गुटों को शक्ति दी और उन्हें एकजुट किया, लेकिन यह बात बृहत्तर एकता 'और विकास के लिए बाधक हुई। इसने दस्तकारी, शिल्प, वाणिज्य और व्यापार का विकास किया, लेकिन हमेशा अलग-अलग समुदायों के भीतर। इस तरह खास ढंग के धंधे पुश्तैनी बन गए और नए ढंग के कामों से बचने और पुरानी लकीर पीटते रहने की प्रवृत्ति पैदा हुई। इससे बड़ी संख्या में लोगों को विकास के अवसरों से वंचित करते हुए, उन्हें स्थायी रूप से समाज की सीढ़ी में नीचा दर्जा देकर यह मूल्य चुकाया गया।

इसी कारण हर तरफ़ ह्रास हुआ– विचारों में, दर्शन में, राजनीति युद्ध की पद्धति में, बाहरी दुनिया के बारे में जानकारी और उसके साथ संपर्क में। साथ ही क्षेत्रीयता के भाव बढ़ने लगे, भारत की अखंडता की अवधारणा के स्थान पर सामंतवाद और गिरोहबंदी की भावनाएँ बढ़ने लगीं और अर्थव्यवस्था संकुचित हो गई। इसके बावजूद जीवनी शक्ति और अद्भुत दृढ़ता बची हुई थी और इसके साथ लचीलापन एवं अपने को ढालने की क्षमता। इसीलिए वह बचा रह सका, नए संपर्कों एवं विचारधाराओं का लाभ उठा सका और कुछ दिशाओं में प्रगति भी कर सका, लेकिन यह प्रगति अतीत के बहुत से अवशेषों से जकड़ी रही और बाधित होती रही। •

जिजीविषा

बिना हाथों के भी पैरों से कर दिया कमाल

प्राची रतूड़ी मिश्र

अपने पैरों की उंगलियों के बीच पेन दबाकर पेंटिंग बनाती 27 साल की अंजना को देखना एक यादगार अनुभव होता है। अंजना मलिक एक मजदूर की बेटी हैं और बिना हाथ और विकृत पीठ के साथ पैदा हुई थी। कुछ साल पहले तक वह गलियों में भीख मांगने को अभिशप्त थीं लेकिन अमेरिका की आर्टिस्ट और योगा टीचर स्टेफनी जॉइस ने अंजना के की जिंदगी का रास्ता बदल दिया।

Anjana Malik with Stephanie Joyce, an artist and yoga teacher from US, who helped her in her artistic pursuits. (Right) Malik's painting of Lord Ganesha

जॉइस ने हमारे सहयोगी अखबार टाइम्स ऑफ इंडिया को अंजना से अपनी पहली मुलाकात के बारे में बताया, 'मैं उसे स्वर्ग आश्रम के पास एक कोने में पैरों में पैन दबाए बैठे देखा। वह कागज पर कुछ लिखने की कोशिश कर रही थी। इस बीच वह लोगों से भीख भी मांग रही थी। मैंने उसके पास गई तो मैंने उससे काफी प्रभावित हुई कि वह कितनी सफाई से अपने पैरों से 'राम' लिख सकती थी।'

अंजना की क्षमता को देखकर जॉइस को लगा कि अंजना पेंटिंग भी कर सकती है। उन्होंने कहा, 'मैंने उसे अपनी स्केचबुक दिखाई और वह सीखने के लिए काफी उत्साहित थी। इसलिए अगले दिन मैं उसके लिए कुछ रंग ले आई। मैं उसकी नैसर्गिक कलाकारी की क्षमता से काफी प्रभावित थी। कुछ ही हफ्तों में अंजना पूरी तरह से एक कलाकार बन गई।'

कुछ महीनों की कोशिश के बाद अंजना अब भगवान, पक्षी, मोर जैसी पेंटिंग अपने पैरों से बनाती है। कुछ ही दिनों में उसकी पेंटिंग लोगों का ध्यान खींचने लगीं। अब उसकी पेंटिंग 2,500 से 25,000 रुपये के दाम पर बिकती हैं जिससे उसके माता पिता और दिव्यांग भाई की भी वित्तीय सहायता हो रही है।

अंजना ने बताया, 'मैं नैनीताल में पैदा हुई थी उसके बाद हमारा परिवार ऋषिकेश आ गया। मैंने पांचवी कक्षा के बाद स्कूल छोड़ दिया और मुझे लगने लगा कि मैं अपने परिवार के लिए बोझ बन गई हूँ। इसके बाद मेरे बड़े भाई ने आत्महत्या कर ली जिससे हमारा परिवार और बुरी स्थिति में आ गया।' जॉइस से अपनी मुलाकात के बारे में अंजना कहती हैं कि अब वह सम्मान के साथ अपनी जिंदगी जी सकती हैं। उन्होंने कहा, 'मैं अब जो कर रही हूँ वह मुझे अच्छा लगता है। मुझे कुछ भी बनाने में एक हफ्ते से 10 दिन तक लगते हैं। लेकिन मुझे इससे कोई परेशानी नहीं।' •

विशिष्ट शृंखला : ज्ञानपीठ पुरस्कार 1988

डॉ. सिंगिरेड्डी नारायण रेड्डी

तेलुगु साहित्यकार डॉ. सिंगिरेड्डी नारायण रेड्डी को वर्ष 1988 का ज्ञानपीठ पुरस्कार समर्पित किया गया। यह पुरस्कार डॉ. सिंगिरेड्डी नारायण रेड्डी को भारतीय साहित्य में उत्कृष्ट योगदान के लिए दिया गया। डॉ. नारायण रेड्डी कवि, आलोचक, गीतकार, नाटककार, शिक्षाविद् तथा वक्ता के रूप में आधुनिक तेलुगु साहित्य में विशिष्ट स्थान रखते हैं। गुंजायमान स्वर एवम् भाषा-संगीत पर मनोहर अधिकार के धनी डॉ. रेड्डी में एक सर्जक की प्रतिभा और एक वक्ता के आकर्षण का अद्‌भुत योग है। लघुकाय गीत-संग्रह 'नव्वनि पुबु (अनहँसा फूल) के साथ स्फुरित होने वाला उनका कवि-व्यक्तित्व शीघ्र ही उनके 'मध्यतरगति मंदहासम्' में मध्यवर्ग की कोमल मुस्कानों में पुष्पित-पल्लवित हो गया। एक ओर वे अपने 'ऋतुचक्रम' में ऋतु-सौंदर्य के और दूसरी ओर 'मंटलु-मानवुडु' में मानव-जीवन की धधकती ज्वालाओं के अट्टहास के साक्षी बने। कवि की परिपक्वता के परिचायक महाकाव्य 'विश्वंभरा' में वे मानव की सार्वभौमिक संकल्पना के द्रष्टा के रूप में उभरे, इस काव्य में उन्होंने न केवल मुक्त छन्द में महाकाव्य को रूपायित किया वरन् कलात्मक परिणति, वैज्ञानिक प्रगति एवं आध्यात्मिक प्रतीति की प्राप्ति के प्रयास में मनुष्य की युग-युग व्यापी त्रिपार्श्वीय यात्रा का निरूपण भी किया। उनकी समस्त रचनाओं में गीतात्मक स्वच्छन्दतावाद, आशावादी मानववाद, प्रगतिशील आदर्शवाद तथा स्वस्थ यथार्थवाद का एक सुरम्य सम्मिश्रण है। तेलुगु समाज में वे 'सेनारे' नाम से लोकप्रिय हैं जो उनके नाम का संक्षिप्त रूप है। –सी. नारायन रेड्डी

डॉ. सिंगिरेड्डी नारायण रेड्डी का जन्म 19 अगस्त,1932 को हनुमान जी पेट, करीमनगर, आंध्रप्रदेश में कृषक परिवार में हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा उर्दू माध्यम से हुई बाद में तेलुगु से एम.ए. किया. 'तेलुगु कविता : परंपरा एवं प्रयोग' विषय पर पी-एच. डी. उपाधि प्राप्त की तथा उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद में अध्यापन किया तथा शिक्षा एवं प्रशासन के अनेक उच्च पदों पर रहे। डॉ रेड्डी की काव्यरचना 'कपूर वसंतरायलु' ने उन्हें साहित्य जगत में प्रतिष्ठित किया। गीतात्मक अभिव्यक्ति की प्रांजलता, रसनिष्यंदिनी भाषा, चित्ताकर्षक बिंब-योजना, श्रुतिसुलभ माधुर्य तथा लालित्यपूर्ण लय की दृष्टि से इसकी समता करने वाले काव्य उस समय बहुत कम थे। इसके बाद अनेक प्रसिद्ध रचनाएँ प्रकाशित हुईं जिनमें 'ऋतुचक्रम', 'मुखामुखी', 'भूमिका', 'विशम्भरा' आदि।

सम्मान :

1988 में 'ज्ञानपीठ पुरस्कार', 1977 में 'पद्म श्री', 1992 में 'पद्म भूषण', 1988 में 'राज-लक्ष्मी अवॉर्ड', 'तेलंगाना सारस्वत परिषद' के अध्यक्ष, कुमार आशान (केरल) पुरस्कार, आंध्र साहित्य अकादमी पुरस्कार, सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार, भारतीय भाषा परिषद् पुरस्कार आदि।

अभिभाषण :

मेरे गीत पल्लवित हुए थे मेरे गाँव हनुमानजी पैठ में। उसमें लतायें जड़ गयी थीं हैदराबाद शहर में, और ये लताएँ अब हस्तिनापुर तक व्याप्त हो गयी हैं– इस प्रतिष्ठित ज्ञानपीठ पुरस्कार के माध्यम से। चमत्कार की बात यह है कि हनुमानजी पैठ, हैदराबाद और हस्तिनापुर–ये तीनों शब्द हकार से आरम्भ होते हैं। मेरे भीतर का कवि आज इस त्रयी को मानसा वाचा कर्मणा प्रणाम करता है।

प्रवाह को प्याले में भरकर सरसाने वाली उर्दू गजलों ने कुछ ही शब्दों में बहुत कुछ कहने की क्षमता से मेरी वाणी को सक्षम बनाया। बी.ए. में मैंने दूसरी भाषा के रूप में हिन्दी का अध्ययन किया। मेरे सारस्वत जीवन में यह बराबर मेरा साथ देती रही। तेलुगु, संस्कृत, हिन्दी,

डॉ. दीपक पाण्डेय

सहायक निदेशक, केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली-66

ईमेल –dkp410@gmail.com

उर्दू और अंग्रेज़ी भाषाओं तथा उनके साहित्य का अध्ययन करने से मेरी वाणी में वैविध्य का समावेश हुआ। जो व्यक्ति जितनी अधिक भाषाओं का जानकार होता है, वह उतना ही अधिक सभ्य बनता है। हम कितना ही परहेज रखना चाहें दूसरी भाषाओं के शब्द हमारी भाषा में बरबस आ बसते हैं। ग्रीक, स्पेनिश, इटालियन आदि भाषाओं के शब्द-भंडार से मुक्त होकर अंग्लो सेग्जन के कतिपय शब्दों के सहारे क्या अंग्रेजी जीवित रह सकेगी? इसी प्रकार फारसी, अरबी शब्दों को तलाक देकर उर्दू अपना घर नहीं बसा पाती। संस्कृत, प्राकृत, फारसी, अरबी, हिन्दी आदि भाषाओं के शब्दों का परित्याग करने से तेलुगु का कलेवर दुर्बल बन जाता है। इस वास्तविकता को सही दृष्टि से समझने का प्रयास किया जाये तो पता चलेगा कि दूसरी भाषाओं के प्रति द्वेषभाव रखना कितनी मूर्खता है।

आखिर भाषा चाहे कोई भी हो उसका काम जोड़ना है तोड़ना नहीं। वह मूक हृदय को मुखरित कर देती है, बर्बरता को प्रेरित नहीं करती। भाषा की बहुलता मानव की स्वच्छ अभिव्यंजना का प्रबल निदर्शन है। जो भी आधुनिक भारतीय भाषाएँ हैं सबकी सब 'प्रस्थान' की भाषाएँ हैं, 'प्रवाह' की भाषाएँ हैं। भारत की भाषाओं ने प्राच्य संस्कृति के बहुमुखी विकास में जो भूमिका निभाई है, उसे अक्षर-जगत् हमेशा याद रखेगा। भारतीय साहित्य में महत्ता और गुणवत्ता को प्रतिष्ठित करने का श्रेय उसके अपार वैविध्य को मिला है।

सच पूछा जाए तो प्रकृति मनुष्य से भी अधिक सुन्दर होती है, वह प्रबल शक्तिशालिनी भी होती है। फिर भी यदि मनुष्य पैदा न हुआ होता तो प्रकृति निरर्थक पड़ी रहती। एक तरफ पाँच तत्त्वों को और दूसरी तरफ मनुष्य को रखकर तौलकर देखा जाये तो मनुष्य का पलड़ा ही भारी हो जाता है। आकाश की तुलना में मानव अंगुष्ठमात्र है। फिर भी उसने समस्त आकाश को धरती पर उतारकर रख रखा है। हवा में, पानी से और प्रकाश से वह अपनी परिचर्या करवा रहा है। कला, विज्ञान और अध्यात्म के क्षेत्रों में वह धीरे-धीरे आगे बढ़कर अदृश्य शक्तियों को समय के परदे पर नचा रहा है। जिन शक्तियों तक अब तक उसकी गति नहीं थी, उन सबको बाँधकर वह अपने पैरों में पड़े रहने के लिए बाध्य कर रहा है। इस सतत साधना में मनुष्य बार-बार गिरकर भी हार नहीं रहा है। चोट खाकर भी वह होश नहीं खो रहा है। जो पत्ता झर जाता है वह फिर डाल में शामिल नहीं हो सकता। पर्वत का जो शिखर टूटकर अलग हो जाता है वह फिर पहाड का अंग नहीं बन सकता। यही अन्तर प्रकृति और मनुष्य के बीच में है। लेकिन मनुष्य के बारे में यह कहा जा सकता है कि वह तो मर्त्य है। हवा की तरह, प्रकाश की तरह वह अनन्तकाल तक जीवित नहीं रह सकता।

जन्म-मरण की शृंखला में जकड़ा हुआ मनुष्य मेरा लक्ष्य नहीं है। अविच्छिन्न और अनाहत गति से आगे बढ़ने वाली मानवता मेरी विवक्षा का विषय है। कभी-कभी भ्रम होता है कि इसका अन्त होने वाला है पर वास्तव में यह निरन्तर है। कभी-कभी मौत का धुआँ दिखाई देता है। पर वह मृत्यु नहीं है, अमृत है। मानव नित्य चेतनता की मूर्ति है। उसके मार्ग में पग-पग पर अवरोध खड़े हो जाते हैं। टूटी-फूटी सड़कें दिखायी देती हैं। उसके पैरों को जड़ से उखाड़ने वाली आँधियाँ चलती हैं। इन सबका सामना करने वाला मनुष्य ही सही साधक है– "एन्नि सालु चेक्किते ओक शिल्पम् एन्नि सालु तीर्चिते ओक चित्रम् कबुर्लेवो चेप्पके ओ कालमा एन्नि सालू चस्ते ओक जीवितम्।"

"कितनी बार तराशने से एक कलाकृति बनती है कितनी बार बनाने से एक चित्र बनता है। कोरी बातें छोडकर बताओ हे काल! कितनी बार मरने से एक जीवन बनता है?" "कविर्मनीषीः परिभूः स्वयंभूः", "नान्ऋषिः कुरुते काव्यम्"–आदि वैदिक सूक्तियाँ सुनकर मैं चौंक उठता हूँ। मैं अपने आपसे पूछ लेता हूँ– क्या यह स्वयंभूपन, यह ऋषिता मेरे कवि में भी है? वल्मीक (बाम्बी) जैसे शरीर से उभरकर आने वाला प्रत्येक कवि वाल्मीकि की तरह स्वयंभू है। इस प्रसंग में भट्ट तौत की दी हुई कवि की परिभाषा स्मरणीय है। उन्होंने कहा- "दर्शनात् वर्णनात् चाथ रुढा लोके कविश्रुतिः।" विश्व के किसी भी महाकवि के लिए यह सूक्ति लागू होती है। इस परिभाषा को सीधी-सादी भाषा में कहा जाए तो सबसे पहले कवि को देखना चाहिए और उसके बाद जो जैसा देखा वह उसी प्रकार उनके शब्दों में दिखायी देना चाहिए। परिनिष्ठित भाषा में इसका आशय यही है कि कवि में दो प्रकार की क्षमताएँ अवश्य होनी चाहिए–दर्शन और वर्णन। दर्शन से आशय केवल वही नहीं है, जो हम अपनी चमड़ी की आँखों से या शीशे की आँखों से देख पाते हैं। लम्बाई और गहराई में पैठकर देखने वाली दृष्टि ही यह दर्शन है जिसको हम 'विजन' भी कह सकते हैं। उसी दृष्टि को सशक्त रूप में व्यक्त करने की क्षमता ही वर्णन है। इसी को प्रोवीजन या कम्युनिकेशन कहा जा सकता है। जिस कवि में ये दोनों उपज्ञाएँ प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं, उनके लिए पुस्तक के आवरण पर अपना नाम अंकित करने की आवश्यकता नहीं है। कविता के नीचे अपने हस्ताक्षर करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। प्रतिभाशाली कवि की प्रत्येक कविता उसके विशिष्ट व्यक्तित्व का स्पष्ट दर्पण है।

इस लेख के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार–संपादक बिशन टंडन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन पुस्तक को आधार बनाया गया है। संपादक एवं प्रकाशन संस्था के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। ●

कार्टून कोना

(सौजन्य)

बेगम समरू

पूर्वा भारद्वाज

(भारत में स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में बहुत सी अल्प ज्ञात और लगभग अज्ञात महिलाओं का भी बड़ा योगदान रहा है जिसे रेखांकित किया जाना बहुत जरूरी था। इस स्तम्भ की लेखिका पूर्वा भारद्वाज के इसी प्रयास के फलस्वरूप निरंतर ट्रस्ट से एक पुस्तक आई है 'इतिहास रचती आवाज़ें : स्त्री शिक्षा' जिसका इसी विश्व महिला दिवस पर विमोचन किया गया था। इसी पुस्तक में से उनका यह आलेख विश्वा के पाठकों के लिए प्रस्तुत है। –सं.)

इस कड़ी में चलिए 18वीं सदी की फ़रज़ाना उर्फ़ बेगम समरु के सफ़र को देखते हैं। उनके जन्म का साल 1750 या 1753 बताया जाता है। उनके परिवार को लेकर भी निश्चित जानकारी नहीं है, बल्कि कई किंवदंतियाँ हैं। एक मत है कि वे किसी कश्मीरी रईस की बेटी थीं जिसे नाजायज़ बताकर कोठे के हवाले कर दिया गया था। दूसरा प्रचलित मत है कि मुग़ल सल्तनत के किसी रईस के घर जन्मी फ़रज़ाना माँ-बाप के गुज़र जाने के बाद एक तवायफ़ के यहाँ पहुँचा दी गई थीं। वहीं फ़रज़ाना का पालन-पोषण हुआ।

कोठे पर ही वाल्टर राइनहार्ट (Walter Reinhardt) ने फ़रज़ाना को देखा था। मूलतः वाल्टर राइनहार्ट फ्रांसीसी था या आस्ट्रियाई या जर्मन, इसको लेकर अलग अलग राय है। उसके पुकार का नाम सोम्बर (Sombre) था। वह भाड़े का योद्धा था और बहुत नामी-गिरामी था। उसने फ्रांसीसी-ब्रिटिश कंपनी से लेकर जाटों, बंगाल-अवध के नवाबों और मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय तक के लिए काम किया था। कोठे पर आने-जाने के दौरान जल्दी ही दोनों की दोस्ती हो गई। उस समय वाल्टर अधेड़ था और फ़रज़ाना किशोरी थी। वाल्टर की वजह से फ़रज़ाना को लड़ाई के मैदानों और कूटनीतिक फैसलों में भागीदारी का मौका मिला। कूटनीतिक फैसलों में भी हर जगह फ़रज़ाना सोम्बर के साथ रहती थीं और उन विलक्षण मौकों ने उन्हें शिक्षित-प्रशिक्षित किया।

बताते हैं कि फ़रज़ाना ने 4000 सैनिकों की सेना का बखूबी नेतृत्व किया। रणक्षेत्र में घोड़े पर सवार फ़रज़ाना की फुर्ती देखते बनती थी। कुछ सालों बाद फ़रज़ाना और सोम्बर ने शादी कर ली। उसके बाद जल्दी ही फ़रज़ाना को मुगल शासक से बेगम सोम्बर का खिताब मिला। अपने रणकौशल और नेतृत्व क्षमता के कारण वे मुगल शासक की नज़र में चढ़ गई थीं। लोगों के बीच भी उनकी ख्याति होने लगी। धीरे धीरे उनके नाम बेगम सोम्बर का हिन्दुस्तानीकरण हुआ और वे कहलाने लगीं बेगम समरु।

मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय से सोम्बर को दिल्ली के करीब सरधना की जागीर मिली थी। 1778 में सोम्बर की मौत हो गई तो उनकी जागीर बेगम समरु ने सँभाली। लेकिन यह सब आसानी से नहीं हुआ था। गद्दी पर अपना हक़ लेने के लिए बेगम को अच्छा खासा संघर्ष करना पड़ा था। कुशल योद्धा तो वे थीं ही, आगे चलकर कुशल शासिका भी बनीं। उन्होंने अपने राजनयिक संबंधों को निपुणता से सँभाला। उनकी सेना में जाट से लेकर अलग अलग समुदाय के लोग थे। उनकी जागीर में जनता खुश थी और मुगल बादशाह भी। रोहिल्ला सैनिकों से बेगम ने लाल किले को बचाने में भी मदद की थी। उनको "Farzand-i-Azizi" (Beloved Daughter), "Umdat-al-Arakin" (Pillar of the State) जैसी पदवी भी मिली।

बेगम समरु ने कई इमारतें बनवाईं। पुरानी दिल्ली में उनकी हवेली अभी भी है। एक समय में यह 'समरु कोठी' बाग-बगीचों, फव्वारों से घिरा हुआ था। यहाँ देशी-विदेशी मेहमानों का जमावड़ा रहता था। बेगम समरु की खुशमिजाजी और दरियादिली मशहूर थी।

तत्कालीन दस्तावेज बताते हैं कि बेगम समरु कद-काठी में छोटी थीं। कहते हैं कि वे 4' 11" लंबी और बहुत खूबसूरत थीं।

ttps://ranasafvi.com/then-and-now-begum-samru-s-palace-in-delhi/

https://storytrails.in/history/begum-samru-the-story-of-indias-only-christian-queen/

गोरी, नाज़ुक त्वचा, काली आँखें और लंबे बाल। उर्दू और फ़ारसी के अलावा फ्रेंच और अंग्रेज़ी भाषा की भी जानकार थीं। उनका व्यक्तित्व रोबीला था और जब सिर पर पगड़ी पहनकर युद्ध करने निकलती थीं तो उनकी धज बड़ी सजीली लगती थी। इतना ही नहीं, दरबार में पगड़ी पहनकर बड़ा सा हुक्का पीती हुई बेगम समरु की शान में कोई गुस्ताखी नहीं कर सकता था। उनके दरबार में स्थानीय लोगों के साथ ढेर सारे विदेशी भी होते थे। अमीर-उमरा से भरी महफ़िल में ठाठ-बाट से बैठी अकेली बेगम समरु वाकई अनूठी थीं। उनकी ठसक, उनकी शानो शौकत उनके रुआब, ताकत, दौलत और होशियारी के गवाह हैं। लंबे समय तक बेगम समरु अंग्रेज़ों के खिलाफ़ लड़ती रहीं, मगर अंत में अंग्रेज़ों द्वारा सुलह की पहल पर वे मान गईं और उन्होंने अपनी स्वायत्ता बनाए रखी।

1781 में बेगम समरु कैथोलिक ईसाई बन गईं और इस तरह इकलौती ईसाई शासिका का दर्जा उनको मिला। जोन ऑफ़ आर्क से प्रभावित होकर उन्होंने धर्मांतरण के बाद अपना नाम Joanna Nobilis रख लिया था। कहते हैं धर्म परिवर्तन के कारण उनका पहरावा या रहन-सहन कुछ नहीं बदला था यानी ईसाइयत की झलक आचार-व्यवहार में नहीं थी।

उत्तर प्रदेश के मेरठ के पास सरधना में बेगम समरु ने **Basilica of Our Lady of Graces** नाम से एक शाही चर्च बनवाया था। यह रोमन कैथोलिक चर्च मदर मेरी को समर्पित है। बेगम समरु ने पोप से आग्रह किया था कि सरदाना को चर्च की स्वतंत्र परिधि घोषित की जाए। इससे उनकी पहुँच और धर्म को लेकर उनकी सोच की झलक मिलती है। इस चर्च की बनावट रोम के सेंट पीटर चर्च जैसी है जिसमें भारतीय स्थापत्य कला का भरपूर मेल है। संगमरमर और रंगीन पत्थरों से सजा यह शानदार चर्च इटली के कारीगर के निर्देशन में बना था। बेगम समरु ने विदेशी वास्तुकार (आर्किटेक्ट) और स्थानीय कारीगरों पर खासा खर्च किया था। यही नहीं, यह शाही चर्च उनकी सुरुचि और जानकारी का भी गवाह है। इस चर्च में जो मूर्तियाँ हैं उनमें बेगम समरु की और उनके दरबार में मौजूद देशी-विदेशी लोगों की मूर्तियाँ भी हैं।

बेगम समरु का लोगों पर ऐसा असर था कि लोग उन्हें जादू-टोना करनेवाली मानने लगे थे। कई दस्तावेजों में उनके जर्मन-फ्रांसीसी-आइरिश अनेक प्रेम संबंधों का ज़िक्र मिलता है। यह भी कहा जाता है कि सोम्बर की मौत के बाद उन्होंने एक तोपची से शादी कर ली थी और तब बड़ी राजनीतिक उठा-पटक हुई। शायद सेना ने विद्रोह कर दिया था और आखिरकार बेगम समरु ने अपने रिश्ते को छोड़कर शासन पर ध्यान दिया। इतना निश्चित है कि उन्होंने अपनी शर्तों पर जीवन जिया। उनकी बेगम उम्दा नाम की एक सहेली थीं जिनसे आजीवन उनकी निकटता रही।

बेगम समरु 27 जनवरी, 1836 को इस दुनिया से रुखसत हुईं। उनकी कोई संतान नहीं थी और उन्होंने सोम्बर की पहली पत्नी के बेटे को उत्तराधिकारी बनाया था। लेकिन अंग्रेज़ों ने उनकी दौलत हड़पने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी। आज इतिहास के पन्नों से बेगम समरु लगभग गायब हैं। •

श्रद्धांजलि

पंडवानी गायिका पद्मभूषण तीजन बाई
5 जुलाई 2026 को 70 वर्ष की आयु में निधन

अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति के आजीवन सदस्य एवं नॉर्थ ईस्ट ओहायो शाखा के पूर्व शाखा अध्यक्ष (वर्ष 2011–2012) डॉ. अनूप कपूर का 22 जून को 73 वर्ष की आयु में निधन समिति की एक बड़ी क्षति है।

आपके कार्यकाल में समिति का राष्ट्रीय अधिवेशन सफलतापूर्वक आयोजित किया गया। एक्रन विश्वविद्यालय में शिक्षक रहे खुशमिज़ाज कपूर अस्वस्थता के बावजूद वे अंत तक समिति के सभी कार्यक्रमों में उत्साहपूर्वक भाग लेते रहे।

ॐ शांति !!

इतिहास और सिनेमा के अंतर्संबंध

प्रो. मनोज कुमार झा

भारतीय ही नहीं, विश्व सिनेमा भी हमेशा से इतिहास से प्रेरणा लेता रहा है। भारत के संदर्भ में देखें तो प्रारंभिक राष्ट्रवादी फिल्मों से लेकर स्वतंत्रता के बाद के सामाजिक सिनेमा तक, अतीत केवल एक पृष्ठभूमि नहीं रहा बल्कि अर्थ और संवेदना का एक समृद्ध स्रोत रहा है। इस प्रक्रिया में फिल्मों ने इतिहास की जन-समझ को आकार दिया है– कभी उसे सरल बनाया, कभी उसका रोमानीकरण किया, पर अधिकांशतः वे व्याख्या की सीमाओं के भीतर ही रहीं।

मगर आज जो परिवर्तन दिखाई दे रहा है, वह कहीं अधिक चिंताजनक है। यह इतिहास की व्याख्या से आगे बढ़कर उसके निर्माण का प्रयास है। यह केवल सौंदर्यबोध का प्रश्न नहीं, बल्कि ज्ञानमीमांसा (Epistemology) का प्रश्न है, जो हमें इतिहासलेखन (Historiography) की उन मूलभूत अवधारणाओं की ओर लौटने को विवश करता है जिनके अनुसार इतिहास लिखना केवल घटनाओं का संकलन नहीं, बल्कि साक्ष्यों, संदर्भों और दृष्टिकोणों के बीच सतत संवाद है।

इतिहासकार सदैव यह स्पष्ट करते रहे हैं कि व्याख्या और आविष्कार में मूलभूत अंतर होता है। पहली साक्ष्यों की सीमाओं के भीतर अर्थ तलाशती है, जबकि दूसरी उन सीमाओं को ही त्याग देती है।

फ्रांसीसी इतिहासकार मार्क ब्लॉक ने इतिहास को 'समय में मनुष्य का विज्ञान' कहा था। उनके लिए इतिहास का आधार स्रोतों की आलोचनात्मक जांच और जटिलताओं को स्वीकार करने की बौद्धिक विनम्रता थी। ईएच कार ने भी यह स्पष्ट किया कि इतिहासकार तथ्यों का चयन अवश्य करता है, मगर वह चयन साक्ष्यों के साथ निरंतर संवाद में ही सार्थक होता है। आज कुछ सिनेमाई प्रस्तुतियां मानो इस बौद्धिक अनुशासन से मुक्त हो चुकी हैं। वहाँ दर्शकों के सामने कोई बहस योग्य अतीत नहीं रखा जाता, बल्कि एक पूर्वनिर्धारित और निर्विवाद सत्य प्रस्तुत किया जाता है।

आज ऐतिहासिक भव्यता (historical spectacle) की एक ऐसी प्रवृत्ति उभर रही है, जिसमें पात्रों का निर्माण अभिलेखों और स्रोतों से कम, और वर्तमान की राजनीतिक चिंताओं तथा पूर्वाग्रहों से अधिक होता है। पद्मावत मध्यकालीन इतिहास को जिस प्रकार प्रस्तुत करती है, उसमें ऐतिहासिक जटिलताओं की अपेक्षा दृश्य वैभव और नैतिक द्वंद्व अधिक प्रमुख हो जाते हैं। इसी प्रकार तानाजी: द अनसंग वॉरियर मराठा-मुग़ल संबंधों की बहुस्तरीय ऐतिहासिक वास्तविकताओं को एक सरल, ध्रुवीकृत और सभ्यतागत संघर्ष में बदल देती है।

यह प्रवृत्ति सम्राट पृथ्वीराज में भी दिखाई देती है, जहाँ पृथ्वीराज चौहान को लगभग एक मिथकीय प्रतिरोध-नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नायकत्व सिनेमा का स्वाभाविक गुण है, पर जब वह इतिहास की जटिलताओं को पूरी तरह विस्थापित कर देता है, तब इतिहास एक नैतिक कथा भर रह जाता है।

वास्तविक ऐतिहासिक व्यक्तित्व, जो अपने समय की राजनीतिक परिस्थितियों, समझौतों और सीमाओं से निर्मित था, एक ऐसे प्रतीक में बदल दिया जाता है जो प्रश्न नहीं उठाता, केवल घोषणाएँ करता है। परिणामतः इतिहास जिज्ञासा का विषय न रहकर वैचारिक पुष्टि का उपकरण बन जाता है।

यह आलोचना किसी एक फिल्म तक सीमित नहीं है। चिंता उस व्यापक प्रवृत्ति की है जिसमें सिनेमा अतीत पर अधिकार का दावा करने लगा है। समस्या काल्पनिकता (fictionalisation) में नहीं है।

साहित्य और सिनेमा में 'यदि ऐसा होता तो?' जैसे प्रतिकल्पनात्मक (counterfactual) प्रयोग लंबे समय से स्वीकृत रहे हैं। समस्या तब उत्पन्न होती है जब कल्पना स्वयं को अंतिम ऐतिहासिक सत्य के रूप में प्रस्तुत करने लगे। तब दर्शक को सोचने के लिए नहीं, बल्कि मान लेने के लिए आमंत्रित किया जाता है।

इसके विपरीत इतिहास लेखन बहुलता का पक्षधर है। रणजीत गुहा और सबाल्टर्न स्टडीज़ समूह ने इतिहास के उन स्वरहीन पात्रों को सामने लाने का प्रयास किया जिन्हें प्रभुत्वशाली इतिहास ने उपेक्षित कर दिया था। उनका उद्देश्य किसी एक स्थापित इतिहास को दूसरे से बदलना नहीं था, बल्कि इस धारणा को चुनौती देना था कि अतीत का केवल एक ही अधिकृत संस्करण हो सकता है। दुर्भाग्य से समकालीन सिनेमा का एक बड़ा हिस्सा इसी बहुलता को संकुचित कर एक भावनात्मक और एकरेखीय कथा में बदल देता है।

यह तर्क दिया जा सकता है कि सिनेमा ने हमेशा इतिहास के साथ रचनात्मक स्वतंत्रता बरती है। यह सही भी है। किंतु नाटकीय प्रस्तुति (dramatisation) और विकृति (distortion) में अंतर होता है। द कश्मीर फाइल्स एक अत्यंत दुखद और जटिल ऐतिहासिक प्रसंग को जिस दृष्टि से प्रस्तुत करती है, उसे अनेक इतिहासकारों और शोधकर्ताओं ने चयनात्मक और एकांगी बताया है।

इसी प्रकार द केरल स्टोरी के तथ्यात्मक आधार और उसके व्यापक निष्कर्षों पर भी गंभीर प्रश्न उठाए गए हैं। चिंता अतिशयोक्ति से अधिक उस प्रवृत्ति की है जिसमें चयनित कथाओं को प्रामाणिक इतिहास के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया जाता है।

इतिहास केवल अकादमिक विमर्श नहीं होता बल्कि विविधताओं से भरे समाजों में वह लोगों की स्मृतियों, पहचानों और सामूहिक अनुभवों का हिस्सा होता है। जब सिनेमा अतीत को एकमात्र सत्य के रूप में प्रस्तुत करता है, तब वह सामाजिक विभाजनों को और कठोर बना सकता है या यूँ कहें कि बना भी देता है।

समुदाय साझा इतिहास के सहभागी नहीं रहते; वे एक नाटकीय सभ्यतागत संघर्ष के स्थायी नायक और खलनायक में बदल दिए जाते हैं। तब इतिहास संवाद का नहीं, राजनीतिक लामबंदी का माध्यम बन जाता है और यह अंततः समाज की चेतना और समझ को क्षत विक्षत करता है।

यहीं, हेडन ह्वाइट के विचार अत्यंत प्रासंगिक हो उठते हैं क्योंकि उन्होंने कहा था कि किसी कथा की शक्ति केवल तथ्यों से नहीं, बल्कि उसके कथात्मक विन्यास और भावनात्मक प्रभाव से भी आती है। सिनेमा अपनी दृश्यात्मक शक्ति और भावनात्मक तीव्रता के कारण इस प्रभाव को कई गुना बढ़ा देता है। ऐसे समय में, जब पढ़ने की संस्कृति लगातार कमज़ोर हो रही है, बहुत-से लोगों के लिए इतिहास से पहला और शायद अंतिम परिचय सिनेमा ही बन जाता है और इस प्रकार का परिचय प्रीतिकर नहीं दिखता।

यहीं सबसे बुनियादी प्रश्न उठता है– अतीत को कहने का अधिकार किसके पास है और उसके साथ जुड़ी जिम्मेदारी क्या है? जब फिल्मकार इतिहासकार की भूमिका ग्रहण करते हैं, लेकिन इतिहासकार की पद्धति और अनुशासन को नहीं अपनाते, तब कहानी और ज्ञान के बीच की रेखा धुंधली हो जाती है।

यह स्थिति तब और अधिक चिंताजनक हो जाती है जब ऐसी प्रस्तुतियां समकालीन राजनीतिक परियोजनाओं के साथ जुड़कर वर्तमान को वैध ठहराने का माध्यम बनने लगती हैं।

यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सिनेमा की कल्पनाशीलता, असहमति और प्रश्नाकुलता पर कोई अंकुश नहीं लगाया जाना चाहिए। चुनौती सिनेमा को सीमित करने की नहीं, बल्कि उसे उसके उचित संदर्भ में समझने की है। उसे इतिहास का अंतिम निर्णायक नहीं, बल्कि अनेक व्याख्याओं में से एक के रूप में देखा जाना चाहिए। तभी रचनात्मक स्वतंत्रता और ऐतिहासिक ईमानदारी दोनों साथ-साथ सुरक्षित रह सकती हैं।

इसके लिए इतिहास की सार्वजनिक समझ को भी पुनर्जीवित करना होगा। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में इतिहास को रटने की वस्तु नहीं, बल्कि प्रमाण, व्याख्या और बहस के माध्यम से विकसित होने वाली बौद्धिक प्रक्रिया के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए। उतना ही आवश्यक यह भी है कि सिनेमा में विविध दृष्टिकोणों को स्थान मिले।

जब अनेक कथाएँ समानांतर रूप से अस्तित्व में होती हैं, तब वे एक-दूसरे से संवाद करती हैं, एक-दूसरे को चुनौती देती हैं और किसी एक संस्करण को अंतिम सत्य बनने से रोकती हैं। इस अर्थ में बहुलतावादी सिनेमा, बहुलतावादी इतिहासलेखन का स्वाभाविक विस्तार है। यहाँ राज्य की भूमिका सेंसर की नहीं, बल्कि एक ऐसे संरक्षक की होनी चाहिए जो स्वतंत्र रचनात्मकता, शोध और विविध दृष्टिकोणों को प्रोत्साहित करे।

इतिहास, जैसा कि इतिहास लेखन हमें सिखाता है, कभी बंद ग्रंथ नहीं होता। वह अतीत और वर्तमान, प्रमाण और व्याख्या, स्मृति और अर्थ के बीच चलने वाला निरंतर संवाद है। जब यह संवाद एकालाप में बदल जाता है– चाहे वह कितना ही दृश्यात्मक और आकर्षक क्यों न हो– तब इतिहास भी क्षीण होता है और समाज भी। सिनेमा अतीत को प्रकाशित कर सकता है, बशर्ते वह विनम्रता के साथ स्वयं को अंतिम सत्य नहीं, बल्कि एक बड़े और जटिल संवाद का सहभागी माने।

अंततः प्रश्न यह नहीं है कि सिनेमा इतिहास से संवाद करे या नहीं। प्रश्न यह है कि क्या वह इतिहास के पास समझ की तलाश में जाएगा या निश्चितताओं का निर्माता बनकर। इस प्रश्न का उत्तर केवल हमारी फिल्मों को नहीं, बल्कि हमारी सामूहिक स्मृति, हमारी लोकतांत्रिक संस्कृति और स्वयं हमारे भविष्य को भी आकार देगा। •

भारतीय वैदिक सभ्यता का डीएनए

ओंकारेश्वर

हमारी भारतीय वैदिक सभ्यता का तो डीएनए (DNA) ही सत्य है। हम वह लोग हैं जो जीवन भर भले ही भागते रहें, लेकिन अपनी अंतिम यात्रा में भी दुनिया को यही याद दिलाते हुए विदा होते हैं– 'राम नाम सत्य है'। जब अंत ही सत्य है, तो जीवन झूठ की बैसाखियों पर क्यों? हमारे उपनिषदों का सीधा आदेश है: 'सत्यं वद, धर्मं चर' (सत्य बोलो और धर्म के मार्ग पर चलो)। लेकिन आज हमने 'सुविधा' को धर्म और 'झूठ' को नीति बना लिया है।वैदिक उद्घोष और मेरुदंड का धर्मभारतीय मनीषा में 'सीधे खड़े होने' को केवल शारीरिक मुद्रा नहीं, बल्कि आध्यात्मिक उपलब्धि माना गया है। तैत्तिरीय उपनिषद (2.9.1) की वह अमर पंक्ति जिसे आपने स्मरण किया, वह पूर्ण रूप में इस प्रकार है: *आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान। न बिभेति कदाचन।।* (अर्थ: जो उस ब्रह्म के आनंद को जान लेता है, वह फिर कभी किसी से नहीं डरता।)

ऋग्वेद में भी 'ऋत' (Cosmic Truth) की चर्चा है। वहाँ स्पष्ट है कि जो सत्य के साथ है, वही ब्रह्मांडीय ऊर्जा के साथ है। जिसकी रीढ़ सीधी है, वही सत्य को धारण कर सकता है। विवेकानंद ने भी इसी को स्वर देते हुए कहा था– "उठो, जागो और तब तक मत रुको जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।" यह 'उठना' झुककर चलने वाली भीड़ के बीच अंगद की तरह पैर जमाने का आह्वान है।

सचिव, वैद्य और गुरु : पतन की त्रिमूर्ति गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस (सुंदरकांड) में सत्ता और समाज के पतन का जो सूत्र दिया है, वह आज के 'गोदी मीडिया' और 'दरबारी बुद्धिजीवियों'

पर सटीक बैठता है: सचिव बैद गुरु तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस/ राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास।।

(अर्थ: यदि मंत्री, चिकित्सक और गुरु– ये तीनों भय या किसी लाभ की आशा से 'प्रिय' (चाटुकारितापूर्ण) बोलने लगें, तो राज्य, धर्म और शरीर का शीघ्र ही विनाश निश्चित है।)

आज मीडिया 'सचिव' (सलाहकार) की भूमिका में है, अकादमिया 'गुरु' की और विशेषज्ञ 'वैद्य' की। जब ये तीनों सत्य की कड़वी दवा के बजाय सत्ता के कानों को सुहाने वाला 'झूठ का शहद' चटाने लगें, तो लोकतंत्र का 'शरीर' सड़ने लगता है। कानूनी अपराध और संवैधानिक मर्यादा भारतीय संविधान की प्रस्तावना 'न्याय' और 'स्वतंत्रता' की बात करती है, लेकिन अनुच्छेद 19(1)(a) जो अभिव्यक्ति की आज़ादी देता है, वह 'सत्य की जवाबदेही' से मुक्त नहीं है। कानून की नज़र में 'Perjury' (झूठी गवाही) एक दंडनीय अपराध है। मीडिया जब जनहित के नाम पर जानबूझकर भ्रम फैलाता है, तो वह सामूहिक 'पर्जरी' है।

अदालतों में गीता पर हाथ रखकर शपथ ली जाती है कि "जो कहूँगा सच कहूँगा"। लेकिन जब न्यूज़ रूम की टेबल को ही गवाही की मेज़ बना दिया जाए और वहाँ से रोज़ झूठ परोसा जाए, तो यह न केवल संवैधानिक मर्यादा का उल्लंघन है, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के खिलाफ एक 'बौद्धिक अपराध' है। समय का न्याय (The Justice of Time) बड़ा निर्मम होता है; वह केवल सत्ता को नहीं, बल्कि उस सत्ता के लिए झूठ की ढाल बनने वालों को भी इतिहास के कूड़ेदान में डाल देता है।

महाभारत का वह किस्सा : जब 'झूठ' ने रथ के पहिए ज़मीन पर उतार दिए धर्मराज युधिष्ठिर का रथ हमेशा ज़मीन से चार अंगुल ऊपर चलता था—उनके सत्य की शक्ति के कारण। लेकिन महाभारत के युद्ध में जैसे ही उन्होंने 'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो वा' (अश्वत्थामा मारा गया, पर मनुष्य या हाथी...) कहते हुए अर्धसत्य का सहारा लिया, उनके रथ के पहिए ज़मीन पर आ गिरे।

यही आज के हमारे दौर का हाल है। जैसे ही पत्रकारिता, राजनीति और समाज ने 'अर्धसत्य' और 'झूठ' की राह पकड़ी, भारत का नैतिक रथ जो दुनिया के सामने 'विश्वगुरु' बनकर ऊँचा चलता था, वह स्वार्थ की कीचड़ में धँस गया। एक छोटा सा झूठ पूरी सभ्यता के गौरव को मिटा सकता है, और हम तो रोज़ झूठ की नदियाँ बहा रहे हैं।

गूगल, डिजिटल युग और अमेरिका का पतन आज की गूगल संचालित डिजिटल दुनिया गवाह है– दुनिया अब अमेरिका से इसीलिए दूर हो रही है क्योंकि उसने 'प्रोपेगेंडा' और 'झूठ' को अपना हथियार बनाया। फारस की खाड़ी में जो अमेरिका आज अलग-थलग पड़ा है, वह सैन्य शक्ति की कमी से नहीं, बल्कि अपनी 'टेढ़ी रीढ़' और 'झूठे नैरेटिव' के कारण डूबा है। जब एक महाशक्ति झूठ बोलने लगती है, तो पूरी दुनिया का उस पर से भरोसा उठ जाता है। भारत के साथ भी यही खतरा है। दुनिया हमें इसलिए मानती थी क्योंकि हम बुद्ध, गांधी और सत्य के देश थे। जैसे ही हमने असत्य का हाथ थामा, हम भी अकेले पड़ने लगे।

मीडिया और भविष्य का हिसाब आज का मीडिया यह न भूले कि डिजिटल फुटप्रिंट मिटते नहीं हैं। आज आप जो झूठ 'राष्ट्रभक्ति' के नाम पर परोस रहे हैं, वह असल में राष्ट्र की रीढ़ तोड़ रहा है। झूठ बोलना केवल एक नैतिक बुराई नहीं, बल्कि एक 'कानूनी जुर्म' भी है जिसका हिसाब समय की अदालत बहुत बेरहमी से लेती है।

भविष्य की चेतावनी मीडिया को समझना होगा कि 'झुकना' केवल एक राजनैतिक विकल्प नहीं है, बल्कि यह एक 'जैविक आत्महत्या' है। अरस्तू ने कहा था– "प्लेटो मेरा मित्र है, लेकिन उससे भी बड़ा मित्र सत्य है।"

हमेशा के लिए याद रखने योग्य सूत्र:

सत्य की गूँज : झूठ बोलने की उम्र छोटी होती है, लेकिन उसका हिसाब सदियों तक देना पड़ता है।

पत्रकार का धर्म संविधान की रक्षा करना है, सत्ता की आरती उतारना नहीं। मेरुदंड की शक्ति: इतिहास उन्हें याद नहीं रखता जो 'व्यावहारिक' होकर झुक गए, बल्कि उन्हें याद रखता है जिनकी अस्थियां (जैसे महर्षि दधीचि) सत्य के लिए वज्र बन गईं। सीधा खड़ा होना ही राष्ट्रभक्ति है रामचंद्र गुहा की वह बात हम सबके लिए एक सबक है। राष्ट्रभक्ति का मतलब सत्ता की जी-हुज़ूरी करना नहीं, बल्कि देश के सामने आईने की तरह सच बोलना है। चाटुकारिता का 'कूबड़' लेकर हम विश्वगुरु नहीं बन सकते।

आइए, अपनी रीढ़ को फिर से सीधा करें। याद रखें, इतिहास लचीले और झुकने वाले लोगों का नहीं, बल्कि उन लोगों का होता है जो तूफान में भी सच के साथ सीधे खड़े रहे। क्योंकि अंततः, सत्य ही एकमात्र ऐसी चीज़ है जो डूबती नहीं।

चीनी कहावत है: "अगर तुम सीधे खड़े हो, तो टेढ़े साये से मत डरो।" नीति कहती है –"मनस्वी म्रियते कामं कार्पण्यं न तु गच्छति": मरो तो मरो, पर नीचता की ओर मत झुको। सीधी रीढ़ रखो, दुनिया की लात मत खाओ।

सत्य के साथ खड़े हों, क्योंकि बाकी सब गोलमाल है चाहे वह गुहा का अनुभव हो या तुलसी का दोहा– सत्य यही है कि सीधी रीढ़ विद्रोह नहीं, वह मनुष्य होने की न्यूनतम शर्त है। यदि आप आज सीधे खड़े नहीं हो सकते, तो कल आप अपनी संतानों को सिर उठाकर जीना नहीं सिखा पाएँगे।

"सत्यमेव जयते नानृतम्"–सत्य की ही जीत होती है, झूठ की नहीं। •

एक आवश्यक सूचना

विश्वा के सभी आजीवन सदस्यों और रचनाकारों से निवेदन है कि वे एक बार अपने डाक के पते और फोन नंबर सावधानी पूर्वक जाँच लें। यदि उनमें किसी सुधार की आवश्यकता हो तो कर लें और प्रबंधक संपादक श्री आलोक मिश्र को इस मेल alok.iha@gmail.com पर सूचित करें जिससे भविष्य में पता या फोन नंबर गलत होने से आपको विश्वा न मिलने की स्थिति न आए।

आधुनिक और प्रगतिशील होना क्या है?

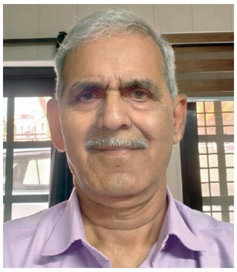

मुशर्रफ़ अली

किसी व्यक्ति या समाज का आधुनिक (माडर्न) और प्रगतिशील (प्रोग्रेसिव) होना केवल भौतिक विकास (जैसे बड़ी इमारतें, गाड़ियां या तकनीक का इस्तेमाल) तक सीमित नहीं है। इसका वास्तविक संबंध सोच, मानसिकता, मूल्यों और जीवन जीने के नजरिए से है। आधुनिकता और प्रगतिशीलता का अर्थ है बीती हुई रूढ़ियों से बाहर निकलकर, हर इंसान की गरिमा, समानता और तर्कसंगत सोच को अपनाना।

एक आधुनिक और प्रगतिशील व्यक्ति वह है जो परंपराओं को आँख मूंदकर मानने के बजाय उनके पीछे के तर्क को समझता है। ऐसा व्यक्ति हर बात को बिना परखे सच नहीं मान लेता। वह ऐसा क्यों है और इसके पीछे क्या तर्क है जैसे सवाल पूछता है। वह लिंग, जाति, धर्म या वर्ग के आधार पर किसी से भेदभाव नहीं करता। वह महिलाओं और पुरुषों को समान अवसर और अधिकार देने में विश्वास रखता है। ऐसा व्यक्ति हर नये बदलाव को स्वीकार करता है। खुद को समय और तकनीक के साथ ढालना आधुनिकता है। ऐसा व्यक्ति नई चीजों को सीखने और अपनी पुरानी गलतियों से सुधार करने के लिए हमेशा तैयार रहता है। ऐसा व्यक्ति दूसरों के विचारों का सम्मान करता है। भले ही सामने वाले की राय उससे अलग हो, लेकिन वह उसकी बात सुनता है और लोकतांत्रिक तरीके से असहमत होने का अधिकार सुरक्षित रखता है। मिसाल के तौर पर एक पारंपरिक सोच वाला व्यक्ति कहेगा हमारे यहाँ ऐसा ही होता आया है, इसलिए यही सही है। वहीं, एक प्रगतिशील व्यक्ति कहेगा भले ही यह पुरानी परंपरा रही हो, लेकिन आज के समय में यह किसी के लिए नुकसानदेह है, इसलिए हमें इसमें बदलाव करना चाहिए। आधुनिक और प्रगतिशील समाज की विशेषताएँ क्या हैं जब किसी समाज के बहुसंख्यक लोगों की सोच ऐसी हो जाती है, तो वह समाज प्रगतिशील कहलाता है। एक प्रगतिशील समाज की मुख्य पहचान है व्यक्ति की स्वतंत्रता और गरिमा का सम्मान करना। समाज में हर व्यक्ति (चाहे वह किसी भी पृष्ठभूमि से हो) को अपनी पसंद का जीवन जीने, अपने विचार रखने और आगे बढ़ने की आजादी होती है ऐसे समाज में अंधविश्वास, कुप्रथाओं (जैसे बाल विवाह, जातिभेद या लिंगभेद) के लिए कोई जगह नहीं होती। वहाँ शिक्षा और विज्ञान आधारित दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया जाता है। एक प्रगतिशील समाज सिर्फ ताकतवर या अमीर लोगों की नहीं सुनता, बल्कि समाज के सबसे पिछड़े और कमजोर व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करता है। वहाँ भीड़तंत्र या भावनाएं नहीं, बल्कि संविधान और कानून न्याय तय करते हैं। मिसाल के तौर पर एक समाज जो केवल लड़कों की पढ़ाई पर ध्यान देता है और लड़कियों को घर के काम तक सीमित रखता है, वह रुढ़िवादी है। इसके विपरीत, जो समाज लड़कों और लड़कियों दोनों को उच्च शिक्षा और अपने सपने पूरे करने के समान अवसर देता है, वह एक प्रगतिशील समाज है। संक्षेप में कहें तो, आधुनिकता का मतलब केवल पश्चिमी कपड़े पहनना या अंग्रेजी बोलना नहीं है, और प्रगतिशीलता का मतलब केवल बड़ी गाड़ियां चलाना नहीं है।

असली आधुनिकता और प्रगतिशीलता आपके विचारों में बसती है। जहाँ हर इंसान को बराबरी का हक मिले, जहाँ विवेक और करुणा को बढ़ावा मिले, और जहाँ समाज बिना किसी भेदभाव के सामूहिक रूप से आगे बढ़ सके। जो व्यक्ति भौतिक और बौद्धिक रूप से अतीत में जीता हो, जो बौद्धिक रूप से सामंती युग में और भौतिक रूप से आधुनिक युग में रहता हो प्रगतिशील और आधुनिक नहीं कहा जा सकता। जो भौतिक और बौद्धिक रूप से पूंजीवादी हो वो सामंतवाद से अगले चरण में है यानि सामंतवाद की तुलना में आधुनिक और प्रगतिशील है इसी तरह कोई व्यक्ति या समाज बौद्धिक और भौतिक रूप से पूंजीवाद से अगले चरण समाजवाद में है तो वह पूंजीवाद की तुलना में प्रगतिशीलता और आधुनिकता के अगले चरण में है। लोग ऐसे भी होते है कि भौतिक रूप से तो आधुनिक और प्रगतिशील होते हैं परंतु भौतिक रूप से सामंती युग में रहते हैं। जब कोई व्यक्ति भौतिक रूप से तो आधुनिक युग में जीता हो (लेटेस्ट तकनीक, गाड़ियाँ, सुख-सुविधाएँ आदि), लेकिन उसकी सोच, मानसिकता और मूल्य (बौद्धिक रूप से) सामंती युग (जाति, पाखंड, पितृसत्ता, भेदभाव) के हों।

ऐसे व्यक्ति या समाज को क्या कहा जाता है? मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान में ऐसी स्थिति के लिए कुछ मुख्य शब्दों और अवधारणाओं का प्रयोग किया जाता है। इसको आधुनिकता का छलावा या दिखावा कहा जाता है। ऐसे लोगों को दिखावटी आधुनिक कहा जा सकता है। ये ऊपर से आधुनिक दिखते हैं, लेकिन भीतर से पूरी तरह रूढ़िवादी होते हैं। समाजशास्त्र में इसे सांस्कृतिक पिछड़ापन भी कहा जाता है। इसका अर्थ है कि भौतिक तकनीक और जीवनशैली बहुत तेजी से आगे बढ़ गई, लेकिन इंसान की सोच और संस्कार उस गति से आगे नहीं बढ़ पाए। वह तकनीक के मामले में 21वीं सदी में है, लेकिन सोच के मामले में सदियों पीछे है। इसको सुविधाभोगी सामंतवाद कहते हैं। यह एक ऐसी स्थिति है जहाँ इंसान सामंती सोच (यानी खुद को श्रेष्ठ मानना, दूसरों पर अधिकार जताना, लिंग या जाति के आधार पर भेदभाव करना) को

छोड़ना नहीं चाहता, लेकिन वह सामंतों वाली गरीबी या कठिनाई में भी नहीं रहना चाहता। वह आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल करके अपने उसी सामंती अहंकार और वर्चस्व को और मजबूत करना चाहता है। मिसाल के तौर पर दफ्तर या बिजनेस में एक व्यक्ति अपनी कंपनी में सबसे आधुनिक कंप्यूटर, एआई टूल्स और लग्जरी कार का इस्तेमाल करता है (भौतिक रूप से आधुनिक), लेकिन अपने दफ्तर की किसी महिला सहकर्मी को कमतर आंकता है, मातृत्व अवकाश पर आपत्ति जताता है, या अपने से निचली मानी जाने वाली जाति के कर्मचारियों से भेदभाव करता है (बौद्धिक रूप से सामंती)। घर और परिवार में कोई व्यक्ति महंगे स्मार्टफोन पर दुनिया भर की आधुनिक बातें पढ़ता है, लेकिन घर की बहू या बेटी के बाहर जाने, कपड़े पहनने या अपनी पसंद से जीवन साथी चुनने पर पाबंदियां लगाता है। वह घर का मुखिया (राजा या सामंत) बनकर रहना चाहता है। सोशल मीडिया पर लोग आधुनिक तकनीक (इंटरनेट, स्मार्टफोन) का उपयोग करके समाज में अंधविश्वास, नफरत, जातिवादी या सांप्रदायिक द्वेष फैलाने वाले संदेश भेजते हैं। तकनीक आधुनिक है, लेकिन विचार पूरी तरह पुराने और सड़े हुए हैं। जब कोई व्यक्ति या समाज भौतिक रूप से आधुनिक और बौद्धिक रूप से सामंती होता है, तो इससे समाज में भारी असंतोष और तनाव पैदा होता है। यह स्थिति समाज के लिए खतरनाक होती है क्योंकि ऐसा व्यक्ति आधुनिक हथियारों, तकनीक और धन का इस्तेमाल अपनी सामंती सोच को लागू करने के लिए कर सकता है। ऐसे लोग खुद भी मानसिक तनाव में रहते हैं क्योंकि वे एक तरफ आधुनिक दुनिया की आजादी का आनंद लेना चाहते हैं और दूसरी तरफ पुरानी बेड़ियों को छोड़ना भी नहीं चाहते। जो व्यक्ति भौतिक रूप से आधुनिक और बौद्धिक रूप से सामंती है, उसे प्रगतिशील या आधुनिक बिल्कुल नहीं कहा जा सकता। वह केवल तकनीकी रूप से अपडेटेड सामंती है। असली आधुनिकता और प्रगतिशीलता तभी पूरी होती है जब तकनीक और भौतिकता के साथ-साथ इंसान की सोच, संवेदना और विवेक भी आधुनिक और न्यायसंगत हों। आजकल ऐसे लोग जो बौद्धिक रूप से अतीत में रहते हैं विज्ञान का इस्तेमाल अज्ञान को फैलाने के लिए करते हैं। यह आज के समय की एक बहुत बड़ी कड़वी सच्चाई है। जो लोग बौद्धिक रूप से अतीत (सामंती या अंधविश्वासी युग) में जीते हैं, वे आज के समय में विज्ञान और तकनीक (जो कि भौतिक आधुनिकता का प्रतीक है) का विरोध करने के बजाय उसका सबसे बड़ा हथियार के रूप में इस्तेमाल अपनी अज्ञानता, पाखंड और संकीर्णता को फैलाने के लिए कर रहे हैं। इसे समाजशास्त्र और इतिहास के नजरिए से समझें तो यह एक बहुत खतरनाक विरोधाभास है। ऐसे लोगों पर तकनीक आधुनिक, लेकिन नीयत सामंती और अंधविश्वासी है।

आज कोई भी व्यक्ति जो पुरानी दस्यु-प्रथा, जातिवादी अहंकार, या अंधविश्वास में विश्वास रखता है, वह जंगल में बैठकर प्रचार नहीं कर रहा है। वह हाथ में सबसे आधुनिक स्मार्टफोन रखता है, हाई-स्पीड इंटरनेट का उपयोग करता है, और कृत्रिम बुद्धिमत्ता या सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स का इस्तेमाल करता है। उसका मकसद आधुनिक तकनीक के जरिए अपने पुराने, सड़े-गले विचारों और नफरत भरे संदेशों को पलभर में लाखों लोगों तक पहुँचाना होता है। ऐसे लोग विज्ञान के नाम पर छद्म विज्ञान का प्रचार करते हैं वह विज्ञान के असली सिद्धांतों को नहीं अपनाते (जैसे तर्क, प्रमाण, और प्रयोग), बल्कि विज्ञान के नाम पर झूठे दावे गढ़ते हैं। वे सोशल मीडिया पर ऐसे वीडियो और संदेश फैलाते हैं जिनमें वैज्ञानिक शब्दों का इस्तेमाल करके अंधविश्वास को सही साबित करने की कोशिश की जाती है। उदाहरण के लिए, प्राचीन काल की किसी कथा को आधुनिक रॉकेट साइंस या क्वांटम फिजिक्स से जोड़कर पेश करना, जबकि उनका मकसद केवल लोगों की तार्किक सोच को कुंद करना होता है।

आजकल लोग, समाज को भड़काने के लिए डिजिटल माध्यमों का उपयोग करते हैं। सामंती युग में शोषण का आधार तलवार या शारीरिक बल होता था। आज के तकनीकी रूप से सुसज्जित सामंती लोगों के पास प्रोपेगैंडा फैलाने के लिए एल्गोरिदम, व्हाट्सएप यूनिवर्सिटी और डिजिटल नेटवर्क हैं। वे समाज में डर, अफवाहें और धार्मिक या सामाजिक उन्माद फैलाकर अपनी वैश्विक या स्थानीय पकड़ बनाए रखना चाहते हैं। जब तक विज्ञान और तकनीक की ताकत ऐसे लोगों के हाथ में रहेगी जिनकी बौद्धिक चेतना सामंती और पिछड़ी हुई है, तब तक तकनीक समाज को मुक्त करने के बजाय उसे और अधिक मानसिक गुलामी में जकड़ने का काम करती रहेगी, समाज पिछड़ा बना रहेगा। असली प्रगति तभी संभव है जब भौतिक विज्ञान के साथ-साथ इंसान की वैचारिक और तार्किक चेतना भी उतनी ही आधुनिक हो। •

एक आम आदमी की प्रार्थना

संजय कुंदन

(नवीनतम संकलन 'घेराबंदी और अन्य कविताएँ' से)

वह भगवान से ज़्यादा मांगने में सकुचाता है
उसे लगता है भगवान क्या सोचेंगे
कितना लालची आदमी है
सब कुछ हमीं से मांग रहा है

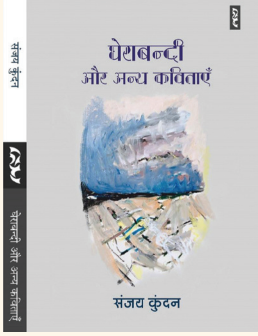

वह भगवान को धन्यवाद देता है
कि उन्होंने उसे ऊंचा भले ही नहीं बनाया
पर अपने ही धरम में रखा

वह मांगता है
हे भगवान
ठेकेदार से कोई पंगा न हो
अगर हो भी तो पुलिस-थाने की नौबत न आए

कभी वह बीमार पड़े
और अस्पताल जाना पड़े तो
वहाँ एक बेड खाली मिल जाए
हो जाए उसका इलाज ठीक से

और अगर वह मर ही जाए
तो उस समय अस्पताल में एंबुलेंस जरूर हो
उसकी लाश को साइकिल से न ले जाना पड़े।

जब सभी बोल रहे हैं तो सुन कौन रहा है ?

डॉ. दुर्गा प्रसाद प्रसाद

क्या आप टेलीविज़न देखते हैं? हमारे समाचार चैनलों पर शाम होते-होते चर्चाओं के कार्यक्रम शुरू हो जाते हैं। चार पाँच लोग स्टूडियो में मौज़ूद होते हैं और दो-चार मिनट की रस्मी शालीनता के बाद वे सब अपने असली रंग में आ जाते हैं। तब वे एक साथ बोलने लगते हैं। कोई किसी और की नहीं सुनता है। हरेक का प्रयास बस यह होता है कि उसके दो वाक्यों के बीच का मौन कहीं दूसरे वक्ता को बीच में घुस जाने का मौका न दे दे। इसलिए हरेक एकदम नॉन स्टॉप बोलता रहता है। किसने क्या बोला, यह न उन्हें समझ में आता होगा, न मुझे। एंकर का काम वैसे तो उन्हें संचालित करने का होता है, लेकिन असल मज़ा तब आता है जब वह भी उनमें से एक बनकर वैसी ही भूमिका निबाहने लगता है। विश्वास कीजिए आधा घंटा ऐसा कार्यक्रम देखकर मेरा जो मनोरंजन होता है वह किसी भी कॉमेडी शो से होने वाले मनोरंजन से अधिक असरदार होता है।

बहुत समय तक मुझे लगता था कि यह केवल टीवी स्टूडियो की बीमारी है। लेकिन धीरे-धीरे मुझे समझ में आने लगा है कि सिर्फ़ अपनी ही कहना और किसी और की न सुनना हमारे समय की आदत बन चुकी है। पत्नी कुछ कहती है और मैं अपने मोबाइल स्क्रीन में डूबा हाँ-हूँ करता रहता हूँ। मैं कुछ कहता हूँ, मेरा बेटा उस कहे को एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देता है। चार लोग किसी पार्क में मिल बैठते हैं तो हरेक की कोशिश यह होती है कि वही ज़्यादा से ज़्यादा बोले। कोई दूसरा क्या कह रहा है, यह सुनने से अधिक उसकी रुचि अपनी बात सुनाने में रहती है। ख़ुद मेरे साथ ऐसा ही होता है। जब किसी का फ़ोन आता है और मैं उसकी बातें सुनते हुए हाँ, यह तो है, अच्छा, अरे जैसे शब्दों और वाक्यांशों से अपनी प्रतिक्रियाएँ देकर उसे भरोसा दिलाता हूँ कि मैं उसकी बातें बहुत ध्यान से सुन रहा हूँ, उसी वक्त मेरा मन कहीं और भटक रहा होता है। बाद में जब पत्नी पूछती है कि आप सामने वाले की किस बात पर सहानुभूति प्रकट कर रहे थे, तो मेरे पास कोई जवाब नहीं होता है। असल में मैं उसकी बात इसलिए नहीं सुन रहा था कि मैं उसे समझ सकूं; मैं केवल इसलिए सुनने का अभिनय कर रहा था कि बीच-बीच में हां-हूँ कर अपनी उपस्थिति दर्ज़ करा सकूँ। उसकी बात को मैंने समझा क़तई नहीं था। कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम किसी को सुनते नहीं हैं, उसे सुनने का दिखावा मात्र करते हैं?

और जैसा आपसी संवाद में हो रहा है वैसा ही सोशल मीडिया पर भी हो रहा है। लम्बी पोस्ट्स तो ख़ैर कोई नहीं पढ़ता है, हालत यह हो गई है कि अपने किसी मित्र-परिचित का नाम देखते ही हमारी उंगली उसकी पोस्ट को लाइक करने के लिए मचल उठती है। हमें जल्दी इतनी होती है कि दो पंक्ति की पोस्ट भी हम नहीं पढ़ते हैं। एक बार तो यह हुआ कि किसी ने अपना श्वेत श्याम चित्र पोस्ट किया और उसे देखते ही नीचे उसके एक आत्मीय ने तुरंत लिख दिया–विनम्र श्रद्धांजलि। और उसके बाद तो कइयों ने वैसा ही कर दिया। बेचारा हमारा मित्र उस घड़ी को कोसता रहा होगा, जब उसने श्वेत श्याम चित्र पोस्ट करने का इरादा किया था। डिजिटल माध्यमों के जानकारों का यह भी कहना है कि सोशल मीडिया का एल्गोरिद्म भी कुछ इस तरह का है कि वह गम्भीर विमर्श को हतोत्साहित करता है। वह भी शोर-शराबे को ही अधिक अहमियत देता है, और जो लोग इस बात को समझते हैं वे वैसा ही करते भी हैं। आपने भी यह बात नोट की होगी कि सोशल मीडिया पर गंभीर और विचारपूर्ण पोस्ट्स की दृश्यता कम होती है।

अब इसी बात को थोड़े और व्यापक संदर्भ तक ले जाते हैं। कहा जाता है कि लोकतंत्र में सब को अपनी बात कहने की स्वतंत्रता होती है। लेकिन क्या इतना पर्याप्त है? किसी लोकतंत्र में आप तो काफी कुछ कह रहे हों लेकिन स्वयं किसी की बात न सुन रहे हों, तो स्वतंत्रता का क्या अर्थ रह जाता है? इसी बात को दूसरी तरह से कहें तो यह कि अगर आपकी असहमति की आवाज़ को कोई न सुनता हो, या उसे दबाने के लिए हर पल प्रयत्नशील रहता हो, अगर विरोधी विचार को वह शत्रुता की तरह देखता हो और ऐसा विचार रखने वाले को हर तरह से अपमानित और प्रताड़ित करता हो, तो ऐसे में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का क्या अर्थ रह जाता है? एक ऐसा तंत्र जिसमें केवल सत्ता को ही यह हक़ हो कि वह अपने मन की बात करे, और शेष को केवल इतनी स्वतंत्रता हो कि वे वाह वाह कर सकें, तो क्या यह नहीं लगेगा कि बोलना निरर्थक है? इस बात को समझा जाना ज़रूरी है कि लोकतंत्र का सबसे बड़ा स्तंभ मतदान नहीं, बोलने की स्वतंत्रता और सुनने की संस्कृति है!

जब मैं सुनने की महत्ता की बात कर रहा हूँ तो अनायास मुझे जापान के प्रसिद्ध लेखक हारुकी मुराकामी की चर्चित किताब 'एब्सोल्यूटली ऑन म्यूज़िक' की याद आ रही है। इस किताब में उनसे संगीत पर बातचीत है। एक जगह मुराकामी कहते हैं कि अगर आप संगीत नहीं सुनते तो आप अच्छा लिख नहीं सकते। और यह दोतरफा है। संगीत सुनने से आपके लिखने की शैली बेहतर होती है, और जब आपके लिखने की शैली बेहतर हो जाती है तो आप संगीत को और अधिक समझने लगते हैं। इस बात को जीवन के संदर्भ में भी देखा और समझा जा सकता है। अगर आप अच्छी तरह सुनते हैं तो अच्छी तरह सोच और कह भी सकते हैं। दुर्भाग्य की बात यह है कि

हम अपनी सुनने की क्षमता खोते जा रहे हैं। और इसका असर हमारे बोलने पर भी हो रहा है। हमारे समय का बड़ा संकट यह नहीं है कि लोगों के पास कहने को बहुत कुछ है, या बहुत कम है; संकट यह है कि उनके पास सुनने का समय और धैर्य बहुत कम है।

क्या यह उपयुक्त समय नहीं है कि हम थोड़ा थमकर यह समझें कि किसी की बात सुनना हमारी परिपक्वता का प्रमाण होता है, न कि हमारी कमज़ोरी। पहले तसल्ली से किसी की बात सुनी जाए, फिर उस पर मनन किया जाए, और उसके बाद अगर ज़रूरी हो तो उसका जवाब दिया जाए। इस बात को समझें कि सुनना असल में दूसरे मनुष्य के अस्तित्व को स्वीकार करना है। उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हुए हम यह भी स्वीकार करते हैं कि उसका दृष्टिकोण भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना हमारा है। और इसीलिए ऐसा करते हुए एक बात का ध्यान रखा जाना बहुत ज़रूरी होगा। अगर आप किसी की बात से असहमत हों तब भी उसके प्रति सम्मान में कमी न आने दें। शायद आज हमें अच्छे वक्ताओं की उतनी ही ज़रूरत है, जितनी या उससे थोड़ी अधिक ज़रूरत अच्छे श्रोताओं की है।

अंत में, केवल एक छोटी-सी बात। यह सदा स्मरण रखें कि बोलना अगर अभिव्यक्ति का अधिकार है, तो सुनना सह-अस्तित्व का संस्कार है।

•

मुकेश कुमार की कविताएँ

1. बीच का रास्ता

बीच में होती हैं
दुविधाएँ, अनिश्चितताएं और अनिर्णय
अवसरवादिता भी होती है बीच में
दोनों तरफ से
लाभ उठाने की कायरताएँ भी
लेती हैं अक्सर बीच की आड़

मध्यम मार्ग सुविधाजनक होता है
भ्रम बनाए रखता है
बिना जोखिम के
परिवर्तन की पगडंडी पर चलने का

यदि मध्यम मार्ग पर चले होते सिद्धार्थ
तो राजसुख भोगते
वनों में न भटकते
कभी न बन पाते गौतम बुद्ध

संतुलन नहीं समझौता होता है मध्यम मार्ग
अतिवाद भी अच्छा नहीं होता
लेकिन हम जीते रहते हैं जाने कितनी अतियाँ
नियति और विवशताएँ मानकर
टालते हैं उनसे लड़ाई
ढूँढ़ते रहते हैं बीच का रास्ता

बीच का रास्ता कहीं नहीं ले जाता
वह बीच में ही रहता है,
अपने में ही ठिठकता, भटकता
ध्यान रहे
लक्ष्य-भेद के लिए अंतत:
खींचनी ही पड़ती है प्रत्यंचा
उसकी अति तक।

2. तालियाँ

मेरे हाथ खाली नहीं है
ताली बजाने के लिए
वे व्यस्त है खेतों में
चला रहे हैं गैंती, फावड़ा
खदानों में तोड रहे हैं पत्थर
सड़कें, बाँध और इमारतें बना रहे हैं
वे झूठे आश्वासनों पर
ताली बजाने के लिए खाली नहीं हैं

हाथों को करने हैं बहुत से काम
दिन ढलने से पहले
ज़िंदगी को बेहतर बनाना है
उसे हाथों से उछालकर हँसाना है
घिनौने हथकंडों से बचाना है

नहीं वे नहीं बजा सकते तालियाँ
वे कब्र खोदने में लगे हैं
कुटिल इरादों को
दफ़नाने के लिए

उन निठल्लों को बुला लो
जिनका पेशा है यही
जो हमेशा खाली रखते हैं हाथ
और इशारा पाते ही बजाने लगते हैं तालियाँ।

इस अंक का मुखपृष्ठ

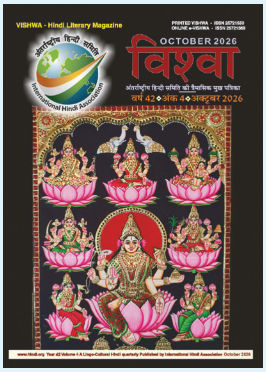

तंजावूर शैली में अष्टलक्ष्मी

कुछ रोचक सूक्तियाँ

– विचार पुराने पड़ जाएं तो चलेगा लेकिन कपड़े पुराने नहीं पड़ने चाहियें क्योंकि लोग कपड़ों से ही पहचानते हैं।
– प्रदर्शन में आदमी को वही सुख मिलता है जो मोर को अपने पंख फैलाने में मिलता है।
– कानून मंदिर की घंटी की तरह है दूर पर बजे तो श्रद्धा पैदा करता है और नजदीक बजे तो सिर दर्द।
– सच्चा भक्त अनुभवों से नहीं निर्देशों से संचालित होता है।

खुदाबख्श प्राच्य सार्वजनिक पुस्तकालय

भारत की विरासत सदियों पुरानी है। इसने गणितज्ञों, वैज्ञानिकों, वास्तुकारों, चिकित्सकों, कवियों, स्वतंत्रता सेनानियों, दार्शनिकों, पत्रकारों और न जाने कितने ही महान लोगों को जन्म दिया है। आप नाम लीजिए, वो सब यहाँ मौजूद हैं!

किंवदंतियों की यह भूमि अपने स्मारकों और पुस्तकालयों की विरासत के लिए भी जानी जाती है, जिनमें से प्रत्येक अपनी-अपनी गाथा की महिमा में डूबा हुआ है। इनमें से एक है खुदा बख्श प्राच्य सार्वजनिक पुस्तकालय; जिसकी स्थापना 19 वीं शताब्दी के अंतिम तिमाही में स्वर्गीय खान बहादुर खुदा बख्श ने की थी। इस पुस्तकालय की एक सुंदर कहानी है। यह एक पिता के सपने को एक योग्य पुत्र द्वारा साकार करने का उदाहरण है। मौलवी मोहम्मद बख्श एक पुस्तक प्रेमी थे और एक सार्वजनिक पुस्तकालय स्थापित करने की इच्छा रखते थे। उन्होंने अपने पुत्र खुदा बख्श को अपनी इस महत्वाकांक्षा को पूरा करने का दायित्व सौंपा। खुदा बख्श को भी पुस्तकों से प्रेम विरासत में मिला और उन्होंने अपने बीमार माता-पिता की इच्छा को साकार किया। उन्होंने अपनी सारी आय दान कर दी, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ इस पुस्तकालय का लाभ उठा सकें।

खुदा बख्श लाइब्रेरी बिहार इंडिया का अनावरण

खुदा बख्श प्राच्य सार्वजनिक पुस्तकालय अक्टूबर 1891 में आम जनता के लिए खोला गया था, जिसमें लगभग 4000 पांडुलिपियाँ थीं, जिनमें से 1400 उनके पिता के निजी संग्रह से थीं। आज इस पुस्तकालय में 21,000 से अधिक प्राच्य पांडुलिपियाँ और 2,00,000 मुद्रित पुस्तकें हैं।

यह पुस्तकालय केवल पुस्तकों और पांडुलिपियों का ही घर नहीं है, बल्कि इसमें कई दुर्लभ चित्रकलाएँ और चीनी मिट्टी, धातु, लकड़ी, कांच आदि की प्राचीन वस्तुएँ भी संग्रहित हैं। इन ऐतिहासिक कलाकृतियों में कुरान की आयतों से उत्कीर्ण बर्तन, अंगूठियाँ, मुहरें, घड़ियाँ, मिट्टी के बर्तन और साथ ही कई वैज्ञानिक और खगोलीय उपकरण शामिल हैं। यह सब इसे पूर्व-आधुनिक काल में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की स्थिति का अध्ययन करने के लिए एक अनिवार्य भंडार बनाता है। यह भारत के 7 प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों द्वारा मान्यता प्राप्त अनुसंधान केंद्र भी है। इसने इस्लामी रहस्यवाद, यूनानी चिकित्सा, कुरान विज्ञान और भारत-उज़्बेक संबंधों जैसे विषयों पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनारों की मेजबानी की है। शैक्षणिक क्षेत्र में, यह प्राच्य पुस्तकालय विज्ञान और पांडुलिपि विज्ञान में एक वर्षीय स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम प्रदान करता है।

26 दिसंबर, 1969 का दिन ज्ञान के इस केंद्र के इतिहास में एक और विशेष दिन था। संसद के खुदा बख्श प्राच्य सार्वजनिक पुस्तकालय अधिनियम (1969) द्वारा पुस्तकालय को राष्ट्रीय महत्व की एक स्वायत्त संस्था के रूप में मान्यता दी गई। तब से यह पर्यटन और संस्कृति मंत्रालय के प्रत्यक्ष नियंत्रण में है।

दक्षता और गुणवत्ता ऐसे गुण हैं जो इस संस्था के 135 वर्षों के इतिहास में हमेशा से रहे हैं। इसी कारण वैश्वीकरण के दौर में भी पुस्तकालय को अपना विशिष्ट पाठक वर्ग प्राप्त है। सितंबर 2005 में, इसने अपनी लगभग 1200 पांडुलिपियों को डिजिटाइज़ करने के लिए एक प्रायोगिक परियोजना शुरू की, ताकि आम जनता तक इसकी पहुँच व्यापक हो सके, मूल पांडुलिपियों को क्षति से बचाया जा सके और अप्रत्याशित दुर्घटनाओं के लिए एक बैकअप प्रति सुनिश्चित की जा सके। औसतन 9,500 पाठक प्रति माह इसके लॉर्ड कर्ज़न रीडिंग रूम में आते हैं, जो बढ़ती मांग के कारण अब सुबह 8 बजे से रात 8 बजे तक खुला रहता है।

इन सभी खूबियों के कारण खुदा बख्श ओरिएंटल पब्लिक लाइब्रेरी सिर्फ एक पुस्तकालय नहीं, बल्कि एक मीडिया केंद्र बन गई है। कौन कहता है कि सपने सिर्फ कल्पनाएं होते हैं? अगर उन्हें प्रयासों के साथ जोड़ा जाए, तो उनमें उम्मीदों से परे साकार होने और अमर हो जाने की क्षमता होती है।

वे दिन : वे लोग

गांधी और परचूरे शास्त्री

गाँधी ने कहा था– मेरा जीवन ही मेरा उपदेश है।

महात्मा गांधी और परचुरे शास्त्री के बीच का रिश्ता बीसवीं सदी के भारत में गहरी जड़ें जमा चुके सामाजिक पूर्वाग्रहों को चुनौती देने वाले सबसे प्रत्यक्ष उदाहरणों में से एक के रूप में सामने आता है।

यह कुष्ठ रोग और अस्पृश्यता से जुड़े कलंक का सामना करने की एक जीवंत प्रतिबद्धता को दर्शाता है, न कि केवल शब्दों के माध्यम से।

विदर्भ के सेवाग्राम आश्रम में उनके जुड़ाव की कहानी गांधीजी की सामाजिक सुधार पद्धति को समझने में एक महत्वपूर्ण अध्याय बनी हुई है।

रोग से विरक्त विद्वान

सम्मानित संस्कृत विद्वान और कवि परचुरे शास्त्री ने गांधीजी के साथ जुड़ने से काफी पहले ही अपनी बौद्धिक क्षमताओं के लिए पहचान हासिल कर ली थी।

हालांकि, कुष्ठ रोग से जुड़े कलंक ने उनकी विद्वत्ता पर ग्रहण लगा दिया। रूढ़िवादी हिंदू परंपराओं के अनुसार, इस बीमारी को आध्यात्मिक अशुद्धता या पाप का प्रतीक माना जाता था, जिसके कारण वे सामाजिक रूप से अलग-थलग पड़ गए और उनका बहिष्कार हो गया।

यह बहिष्कार न केवल बीमारी के शारीरिक प्रभाव को दर्शाता था, बल्कि उस समय के समाज द्वारा लगाए गए सांस्कृतिक और अनुष्ठानिक अलगाव को भी दर्शाता था।

गांधी और परचुरे शास्त्री के बीच पहला संपर्क 1932 में सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान हुआ। दोनों पुणे की येरवडा जेल में बंद थे। शास्त्री को कुष्ठ रोग होने के कारण अलग वार्ड में रखा गया था। जेल अधिकारियों ने गांधी की उनसे मिलने की कोशिशों को नाकाम कर दिया था।

हार मानने के बजाय, गांधी ने शास्त्री को पत्र लिखकर समर्थन के शब्द कहे। इस प्रारंभिक पत्राचार ने एक ऐसे बंधन की नींव रखी जो आगे चलकर गांधी के समानता और सेवा के दर्शन के सबसे महत्वपूर्ण उदाहरणों में से एक बन गया।

महात्मा गांधी परचुरे शास्त्री के अंगों की मालिश करते हुए

शास्त्री की उस दौर के एक निर्णायक राजनीतिक क्षण में भागीदारी ने उनके प्रति गांधी के सम्मान को और भी रेखांकित किया।

सितंबर 1932 में गांधी जी के आमरण अनशन के दौरान, जिसके परिणामस्वरूप पूना समझौते पर हस्ताक्षर हुए, शास्त्री जी ने एक महत्वपूर्ण औपचारिक भूमिका निभाई। अनशन तोड़ने के समय शास्त्री जी ने उपनिषदों के श्लोकों का पाठ किया था।

इस कृत्य से गांधीजी का यह जानबूझकर किया गया चुनाव प्रदर्शित हुआ कि उन्होंने सामाजिक मानदंडों के अनुसार अछूत माने जाने वाले व्यक्ति को एक राष्ट्रीय आयोजन के केंद्र में रखा।

सेवाग्राम आगमन और गांधी जी का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप

1939 तक शास्त्री की हालत बेहद बिगड़ चुकी थी। वृत्तांतों से पता चलता है कि गांधी जी ने शास्त्री को सड़क किनारे दयनीय अवस्था में पड़ा हुआ पाया था।

मानवीय पीड़ा और उससे उत्पन्न सामाजिक बहिष्कार दोनों को पहचानते हुए, गांधी ने शास्त्री को देखभाल और आश्रय के लिए सेवाग्राम आश्रम लाने की व्यवस्था की।

यह निर्णय महज करुणा का कार्य नहीं था। यह उन सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध एक साहसिक बयान था जो बीमारी को पाप के समान मानती थीं और बहिष्कार को उचित ठहराती थीं। कई पारंपरिक समुदायों में, कुष्ठ रोग को न केवल एक चिकित्सीय स्थिति बल्कि कर्मफल का प्रतिबिंब माना जाता था, जिसके कारण बहिष्कार की प्रथा प्रचलित थी। शास्त्री जी को शरण देने का गांधीजी का निर्णय सीधे तौर पर इन मान्यताओं के विरुद्ध था।

गांधी जी ने स्वयं शास्त्री जी की देखभाल की जिम्मेदारी ली। वे प्रतिदिन शास्त्री जी के घावों को धोते, दवा लगाते और उनके अंगों की मालिश करते थे।

कुष्ठ रोगी के साथ ऐसा सीधा संपर्क उस समय असाधारण था जब अधिकांश लोग इस बीमारी से पीड़ित लोगों के निकट आने से भी बचते थे। सेवा का यह दैनिक कार्य गांधी जी के अस्पृश्यता के विरुद्ध रुख का एक महत्वपूर्ण प्रतीक बन गया।

आश्रम परिसर में शास्त्री जी के लिए विशेष रूप से एक कुटिया का निर्माण किया गया था। "पचुरे कुटी" के नाम से जानी जाने वाली यह कुटिया गांधी जी के निवास "बापू कुटी" के ठीक बगल में स्थित थी। शास्त्री जी की कुटिया को उनके निवास के इतने करीब बनाने का निर्णय कुष्ठ रोग से जुड़ी अनुष्ठानिक अशुद्धता की धारणा का प्रत्यक्ष खंडन था।

सेवाग्राम में दृष्टिकोण में बदलाव

सेवाग्राम में शास्त्री की देखभाल से आश्रम के अन्य निवासियों की धारणा में तुरंत कोई बदलाव नहीं आया। बीमारी को लेकर व्याप्त भय के कारण कई लोग उनके इलाज में सीधे तौर पर शामिल होने से हिचकिचा रहे थे।

हालांकि, गांधी जी के निरंतर उदाहरण का समय के साथ प्रभाव पड़ा। आश्रम समुदाय के कई सदस्यों ने धीरे-धीरे शास्त्री जी की देखभाल में सहायता करना शुरू कर दिया, और अपनी प्रारंभिक झिझक को दूर कर लिया।

सेवाग्राम आश्रम, वर्धा में परचुरे कुटी

यह क्रमिक बदलाव न केवल व्यक्तिगत दृष्टिकोण में परिवर्तन को दर्शाता है, बल्कि उस व्यापक सामाजिक मानसिकता के साथ टकराव को भी दर्शाता है जो बहिष्कार और भेदभाव का समर्थन करती थी। गांधी का दृष्टिकोण केवल अस्पृश्यता के खिलाफ मौखिक वकालत तक सीमित नहीं था। सेवाग्राम में उनके कार्यों ने इस मुद्दे को आश्रम की दैनिक गतिविधियों में शामिल कर दिया, जिससे लोगों को भागीदारी के माध्यम से अपनी मान्यताओं पर पुनर्विचार करने की चुनौती मिली।

इस देखभाल के तहत शास्त्री के स्वास्थ्य में सुधार होने पर, गांधी ने उन्हें आश्रम के बौद्धिक जीवन में योगदान देने के लिए प्रोत्साहित किया। शास्त्री ने आश्रम के बच्चों को संस्कृत पढ़ाना शुरू किया।

गांधी ने उन्हें सेवाग्राम में विवाह संपन्न कराने के लिए भी आमंत्रित किया, जिसमें दलितों और सवर्ण हिंदुओं के बीच विवाह भी शामिल थे।

ऐसा करके गांधी ने शास्त्री को सम्मान और नेतृत्व की भूमिका में स्थापित किया, जिससे उस सामाजिक धारणा को उलट दिया गया जिसने उन्हें हाशिए पर धकेल दिया था।

गांधी जी की राजनीति से परे सेवा के प्रति प्रतिबद्धता

शास्त्री की देखभाल को गांधीजी द्वारा दी गई प्राथमिकता केवल सेवाग्राम में शास्त्रीजी के प्रवास तक ही सीमित नहीं थी। गांधीजी के निजी सचिव महादेव देसाई के पुत्र नारायण देसाई द्वारा साझा किया गया एक विवरण इस प्रतिबद्धता का एक उल्लेखनीय उदाहरण प्रस्तुत करता है।

1939 में, द्वितीय विश्व युद्ध में भारत की स्थिति के बारे में ब्रिटिश सरकार के साथ राजनीतिक वार्ता के दौरान, गांधीजी वायसराय लिनलिथगो के साथ चर्चा के लिए शिमला गए थे।

जब बैठक एक सप्ताह के लिए स्थगित हो गई, तो गांधी ने शिमला में रुकने के बजाय सेवाग्राम लौटने का विकल्प चुना। इस निर्णय के बारे में पूछे जाने पर, गांधी ने शास्त्री के प्रति अपनी सेवा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए उत्तर दिया।

राष्ट्रीय राजनीतिक चिंताओं के साथ-साथ कुष्ठ रोगी की देखभाल को प्राथमिकता देना गांधी जी के इस विश्वास को दर्शाता है कि सामाजिक सुधार और व्यक्तिगत सेवा परस्पर जुड़ी हुई जिम्मेदारियाँ हैं। उनके कार्यों से यह स्पष्ट होता है कि हाशिए पर पड़े लोगों की जरूरतों को पूरा करना उतना ही आवश्यक था जितना कि राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए प्रयास करना।

शास्त्री 1942 तक सेवाग्राम में रहे, उसके बाद वे वर्धा के दत्तापुर स्थित एक कुष्ठ रोग आश्रम में चले गए। उनका निधन 5 सितंबर, 1945 को हुआ।

यद्यपि सेवाग्राम में उनका समय केवल कुछ वर्षों तक ही सीमित रहा, लेकिन वहां उनकी उपस्थिति और गांधी जी द्वारा उनकी देखभाल ने आश्रम के इतिहास और भारत में सामाजिक सुधार पर व्यापक चर्चा पर एक अमिट छाप छोड़ी।

सेवाग्राम में परचुरे कुटी आज भी मौजूद है, जहाँ गांधीजी की भेदभाव से लड़ने की प्रतिबद्धता की गहराई को समझने की इच्छा रखने वाले कई लोग दर्शन करने आते हैं।

यह संरचना इस बात का एक भौतिक उदाहरण है कि देखभाल के सरल कार्य किस प्रकार गहरी जड़ों वाले अन्याय का सामना कर सकते हैं।

एक गीत : फूलों का व्यापार

नौशा असरार, ह्यूस्टन

छोड़ो ये बेकार की बातें, आओ मिलकर प्यार करें
साफ करें काँटे नफरत के फूलों का व्यापार करें

बादल, बिजली, फूल औ' तितली, रंग रंग बहुरंगी हैं
सारी उजली किरणें सच में अंदर से सतरंगी हैं
रंगों में हम रंग मिलाएँ, रंगीला संसार करें
छोड़ो ये बेकार की बातें, आओ मिलकर प्यार करें!

पंछी मीठे गीत सुनायें, तिनकों का अंबार लगाएँ
तिनके आपस में मिल जाएँ आँधी तूफ़ाँ तोड़ न पाएँ
आओ तिनका तिनका जोड़ें, मिलकर दरिया पार करें
छोड़ो ये बेकार की बातें, आओ मिलकर प्यार करें!

धरती आँगन, धरती सावन, धरती वन, धरती उपवन
जन गण मन अधिनायक धरती, कण कण देता है जीवन
इस धरती पर जान निछावर एक नहीं सौ बार करें
छोड़ो ये बेकार की बातें, आओ मिलकर प्यार करें!

श्रद्धांजलि

डॉ. सुमन वरदान समिति के वरिष्ठ सदस्य रहे हैं जिन्होंने विभिन्न पदों पर रहते हुए समिति के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया। ॐ शांति!

काठ के पुतले

प्रज्ञा

ललिता के लिए रोज़ का देखा-भाला रास्ता अब पहले जैसा कहाँ रह गया था। घर के छोटे से गेट के बाहर की लंबी गली से गुजरकर चौक की आठ-दस दुकानों के मोहल्ले के बाजार के पार मेन रोड पर ललिता पहले हमेशा तीर की तरह पहुँच जाती थी। उस पर हावी रहती हड़बड़ी जाने आजकल जाने किस खोह में कैद थी। पूरी चाल में एक अलमस्त शोखी उतर आई थी। कदमों को तनिक जल्दी नहीं थी कहीं पहुँचने की। चाल थीमी पर कान चौकन्ने। हवा में फैली ध्वनियों को पूरा पी जाने को आतुर। आंखों में न जाने कितने रंगों का संसार झूम रहा था। उनके साथ झूमती ललिता आजकल गली को चोर नज़रों से देखती चलती। उसकी सभी इंद्रियाँ समवेत रूप में ललिता की इच्छा की गुलाम होकर फौरन से पेशतर उसके हुक्म बजा लातीं। ललिता के हर हुक्म का सिरा सनी से जा मिले यही चाह लिए उसके कदम घर से बाहर उठते। गली भी ललिता को देखकर कभी मुस्कुराती, कभी नया इशारे देती तो कभी कठोर आंखों से ताने-तिशनों के तीर भी छोड़ देती। कुछ महीनों से सनी की ओर से चल रहे इकतरफा खेल में अब ललिता पूरी तरह शामिल थी। सिर्फ एक आखिरी दीवार को दोनों ओर से धक्का लगना बाकी थी जिससे मनचली आंखों के रास्ते होंठों पर लुकाछिपी करती हंसी का यह खेल अब मेल-मुलाकातों के सब्ज़बाग की सैर पर निकल पड़े।

ललिता को गली में देखते ही सनी के यार-दोस्त उसे छेड़ते–

"सनी भाई! आजकल तो ये सड़ी गर्मी भी तुझे चांदनी रात लगती होगी।"

उधर ललिता की सहेलियों में भी सनी को देखते ही कोहनी मारकर कानाफूसी और दबी-दबी हँसी का निराला खेल शुरू हो जाता जिससे सनी के हौसले और बुलंद होते। आज मेन रोड पर ऑटो का इंतज़ार करते सनी की बांछें ललिता को अकेला देखकर खिल गईं। ललिता ने चौंककर इधर-उधर देखा और हर तरफ से निश्चिंत होकर उसकी हँसी ने सनी को खुला निमंत्रण दिया। बहुत दिनों से दिल में भरी अनेक बातों का बंद दरवाजा हौले से खुला और खुलता चला गया। आखिरी हिचक की दीवार आसानी से ढह गई और मेल-मुलाकातों, फोन पर लंबी बातों का सिलसिला निकल पड़ा। सनी के हर दिन का पूरा टाईम टेबल पहले ही ललिता के पास पहुँच जाता और उसी हिसाब से बातों-मुलाकातों के शिखर दोनों साथ चढ़ते। चढ़ाई के रास्ते में कभी-कभी मनुहार,लड़ाई और अबोला भी शामिल होने लगा जो इस रिश्ते में भरोसे और अधिकार की पुख्ता मोहर सरीखा था। दिन-दिन उठती प्रेम की उमंगों ने दोनों को बेवजह हंसना-रोना सिखा दिया था। दिनों ने सप्ताह का रुख किया और सप्ताहों ने मिलकर महीनों पर छलांग लगा दी।

"ले भई ललिता! अब तो हर मुश्किल आसान है। फैक्ट्री के एक साल के प्रोबेशन के बाद परमानेंट स्टाफ हो गया हूँ। मिसेज सनी बनने में अब क्या देर-दार?" सनी ने ललिता का हाथ पकड़कर उसकी आखों में देखते हुए कहा। ललिता पहले सकुचाई। शर्माते हुए उसने जानबूझकर अपने बालों को समेटते हुए कनखियों से सनी को देखा।

"तो फिर...?" सनी ने कुछ क्षण इंतज़ार के बाद फिर पूछा।

"फिर क्या...?" जानबूझकर ललिता ने सवाल खड़ा किया।

"शादी कर लें?" सनी ने बेहिचक कहा।

"शादी...पर...पहले मैं भी तो कहीं कोई काम-धाम ढूंढ लूँ। आखिर ग्रेजुएट हूँ। पार्ट टाईम सेल्स का काम पहले किया भी है। तुम अपनी पैकेजिंग फैक्ट्री की नौकरी से जितना कमाते हो उसमें मेरी सैलरी भी जुड़ जाएगी तो जीवन और सुख से कटेगा।"

पहली बार ललिता ने सनी से अपने बारे में बात की। सनी को उसकी बात दमदार लगी। इतना जरूर था कि शादी से जुड़े सनी के सपनों को अभी जमीन न मिलने से मन की तेज उमंग के रंग चटख होते-होते रह गए। इधर ललिता को भी काम ढूंढकर शादी की जल्दी थी। आत्मविश्वास की पक्की जमीन ही उसके उमंग भरे सपनों का आकाश होने वाली थी। ऐसा आकाश जिसका नीला रंग तरलता से पिघलकर कुछ आसमानी हो जाए तो कभी किसी प्रगाढ़ रेशे में घुलकर एक फिरोज़ी आभा बिखेर दे। कुछ समय बाद ललिता को भी एक बड़े मॉल के नामी स्टोर में सेल्सगर्ल की नौकरी मिल गई। सुबह तैयार होकर जब ललिता मॉल पहुँचती उसे दुनिया बेहद खूबसूरत लगती। जिंदगी का फलसफा नए पैरहन में बला का खूबसूरत हो चला था। उस पर खुदमुख्तारी की महक और रंग छिपाए नहीं छिप रहे थे। मॉल के अनेक चमचमाते, रौनकदार स्टोर्स,चारों तरफ गंध का महकता संसार, मन में उतरकर तन को थिरकाता संगीत, आंखों को लुभाती नई-नई चीजें और उनके लिए बेसब्र लोगों का जोश सब उसे बेतरह अपनी ओर खींचते। यहीं क्यों इन सबके साथ पहले से अधिक तनख्वाह भी उसकी खुशियों का सबब थी। सनी और ललिता कुछ और आजाद हो चले। हर मुलाकात में उनके सपनों का रंग पहले से कहीं ज्यादा गहराने लगा। पैर के नीचे की मजबूत जमीन और नौकरी से आया भरोसा उनके भावी घर की पुख्ता दीवारों में जड़ी खिड़की पर पड़ा सुनहरी पर्दा हिला-डुलाकर घर के अंदर रह रहे ललिता-सनी की प्यार में डूबी जिंदगी का आईना हो चला था। गली के इन लैला-मजनूं की जोड़ी को देखकर कितने जवान दिल धड़कने लगे थे। जवान लोगों का रास्ता पुरानी पहरेदार दीवारों की कब परवाह करता है। इस बेपरवाही में आखिर वही हुआ जो ललिता-सनी नहीं चाहते थे।

"नौकरी के बहाने से खूब नाम रौशन कर रही है हमारा। तेरे लक्षण सही नहीं लग रहे। सुधर जा वरना हाथ-पैर तोड़कर घर में बिठा दूँगा।" पापा की खूनी डोरों वाली डरावनी आंखों से ललिता सिहर

गई। नए प्रेम और नई नौकरी से हर दिन उमगी रहने वाली ललिता की उमंग आज घायल थी। घर की हवा उसके लिए अब पहले सी नहीं रह गई थी।

रोज़ सुबह ललिता के घर से निकलने पर सनी उसे देखने की कोई न कोई तरकीब निकाल ही लिया करता पर कुछ महीनों के इस प्यार में ललिता के परिवार की टेढ़ी निगाह दोनों के रिश्ते पर कहर की तरह टूटी। मेल-मुलाकातों के घटते सिलसिले से सनी भी कम परेशान नहीं था। उसका मन करता ललिता के साथ सारी दिल्ली घूम ले। दिल्ली ही क्यूं उसका मन तो ललिता के साथ आसमान की सैर पर निकल जाने को करता। पूरी आजादी के साथ नीले से आसमानी, आसमानी से गुलाबी थोड़े जामुनी, फिरोज़ी होते हुए अलग-अलग रंगों वाले आसमान की सैर ही अब सपना थी पर हरदम उसे या तो अपने हाथ-पैर मजबूत रस्सियों से बंधे दिखाई देते या फिर ललिता पिंजड़े में बंद दिखती। जमीन की कैद में दोनों आसमान न देख पाते न जी पाते। एक दिन सनी ने सारे दुखड़े अपने दोस्त हितेश को सुनाए। हितेश लॉ कर चुका था और एक वकील के जमेजमाए ऑफिस में उसका अस्सिटेंट था। यही नहीं कुछ समाजसेवी संस्थाओं और संगठनों से भी उसका पुराना नाता था। उसने कहा–

“दिक्कत क्या है यार! अब तुम्हें शादी कर लेनी चाहिए। वैसे भी दो किलोमीटर के दायरे का प्यार घर वालों की तकरार की भेंट चढ़ जाता है। दोनों बालिग हो और अब तो कमाते भी हो।”

“मैं भी यही चाहता हूँ पर ललिता कहती है जिंदगी की गाड़ी के पेट्रोल लायक कुछ पैसे तो बचा लें।”

“परिवार वालों को पता लगने की देर है। वो बदल देंगे तुम दोनों की जिंदगी फिर क्या काम आएंगे ये पैसे?” हितेश झुंझलाया।

“मैं भी डरता हूँ पर ललिता मानती नहीं।” कहते हुए सनी एकदम हताश हो गया। उसे लगने लगा उसका और ललिता का किस्सा कहीं अधूरा न छूट जाए। सर झुकाए निराशा में झूलते सनी को हितेश ने झकझोरकर संभाला। उसे हंसाया और उम्मीद से खाली नहीं होने दिया।

जीवन के असमंजस और नौकरी की नई जिम्मेदारियों की गिरफ्त में घिरी ललिता का मन हरदम चिंताओं में डूबा रहता। चिंता का एक सिरा सनी था तो दूसरा नौकरी। यूं काम ललिता की अपनी पसंद का था। पहला काम एक छोटी दुकान से शुरू हुआ था पर अब उसे एक बड़े स्टोर में काम मिला था। देश के बड़े उद्योगपति की बड़ी कंपनी का आलीशान तिमंजिला स्टोर उस मॉल का दिल था। तन का सजाने वाले बहुब्रैंडी कपड़ों-गहनों-सौंदर्य प्रसाधानों से लेकर घर को आलीशान बनाने वाले छोटे से छोटे और बड़े से बहुत बड़े साजो-सामान से ठसाठस भरा स्टोर था। सुई से लेकर बिजली के उपकरण से लेकर अत्याधुनिक गैजेट्स क्या नहीं बिकता था यहाँ। सुबह से ही रौनक लग जाया करती जो देर रात तक इठलाती रहती। ललिता का मन चाहे कितना ही उदास क्यों न हो रौनक के भागते-इठलाते रेले और दस से बारह घंटे बेफुर्सत ड्यूटी में उसे चिंताओं का होश ही नहीं रहता था। सुबह ग्राहकों की आवाजाही से पहले पहुँचकर अपना कांउटर संभालना। शो-रूम खुलने से पहले एग्ज़ीक्यूटिव द्वारा बुलाई गई रोज़ की मीटिंग के सख्त नियमों को सुनना और काम शुरू होते ही ग्राहकों की फरमाईशों में ललिता खुद को एकदम भूल बैठती। कितनी किस्म के सौंदर्य प्रसाधन और तन को सजाने वाले आभूषण बाजार में उतरे थे। ललिता जैसी सेल्सगर्ल्स का काम प्रैशियस ज़ूलरी को बेचना ही नहीं बल्कि उनके स्टोनवर्क आदि के साथ उनके रख-रखाव की पूरी जानकारी देना भी रहता। पिछली दुकान पर उसने यह सब काम अच्छी तरह सीख लिया था। काउंटर के पीछे सुबह से दोपहर का समय और लंच की कुछ समय की छुट्टी के बाद से शाम-रात का समय कैसे उड़नछू हो जाता उसे समझ ही नहीं आता। सुबह से रात तक कांउटर पर लगातार मुस्तैदी से खड़े होकर वह अपना काम पूरी शिद्दत से करती। मन कितना भी परेशान हो पर ग्राहक का स्वागत उसे पूरी हंसी और ऊर्जा से करना होता। महिला ग्राहक के नखरों से लेकर उसकी बातों का जवाब, उसकी उपेक्षा और गुस्से का जवाब भी लगातार हंसते हुए देने से कितनी बार उसका चेहरा बेतरह थक जाता। अपने काम और उससे होने वाली आय की कल्पना एक ओर उसे रोमांचित करती तो दूसरी ओर पापा का पूरी तनख्वाह पर कब्ज़ा उसे सालता भी। यही सोचकर ललिता मन को दिलासा देती कि शादी के बाद काम भी अपना और तनख्वाह भी पूरी अपनी।

“ललिता! आज प्रमिला नहीं आई है तुम्हारा काउंटर उसके साथ ही है दोनों को मैनेज तुम्हें ही करना है।” या फिर “ललिता! यहाँ से फ्री होते ही स्टोर के नए आए प्रोडैक्ट्स की लिस्ट तैयार करके देना।”–जैसे आदेश पहले दिन से ही उसकी झोली में आ गिरे थे। बारह घंटे की ड्यूटी में जैसे ही सनी की याद उसके मन से टकराती कोई न कोई ग्राहक या आदेश याद के सिलसिले को तोड़ देता। दो पैरों से स्टोर के तीन लोक ललिता और उस जैसे कितने ही लड़के-लड़कियों को दिन में कई बार नापने पड़ते। ललिता अक्सर सोचती दिन न सही रात तो उसकी अपनी है। रात यानी एकांत। रात यानी पहरों से मुक्ति। रात यानी सनी से बतियाने की छूट। यही सोचकर ललिता दिन भर काम की भट्टी में अपने खून-पसीने का ईंधन झोंकती चलती। रात को जब घर भर सो जाता ललिता धीरे से कमरा बंद करके खुसफुसाती-सी सनी से बात करती।

“आज बहुत काम किया सनी। शरीर थकान से चूर-चूर हो रहा है। करवट ले लूँ इतनी हिम्मत भी नहीं।” पहले सनी से बातों के दौरान ललिता की खिलखिलाती हंसी अब अक्सर थकान का रोना लेकर बैठने लगी।

“थकान तो हम लोगों की नौकरी का रोज का किस्सा है ये हमारे प्यार की बातों का टाईम है। काम की बातें काम की जगह छोड़ कर आया कर। मैं रोज रात तेरे कॉल के इंतजार में उल्लुओं सा जागता रहता हूँ और तू इस इंतजार की ऐसी-तैसी कर देती है।” सनी बहुत काबू करने के बाद भी झुंझलाता।

“क्या बताऊँ सनी! सारा दिन खड़े-खड़े बहुत थक जाती हूँ।” ललिता भोलेपन से ईमानदार जवाब देती जो सनी के प्यारे से उमग रहे मन को धक्का देता फिर भी सनी उमंगों को राह देता रहता–

“अभी तेरे लिए सब नया-नया है न। धीरे-धीरे तुझे भी आदत हो जाएगी तो सब कुछ मैनेज होने लगेगा। थकान-वकान के बारे में ज्यादा न सोचा कर। मेरे बारे में सोचा कर तो थकान उड़नछू हो जाएगी।”

कुछ देर उमंग भरी बातचीत के बाद सनी के सवालों के जवाब में

ललिता की की 'हाँ-हूँ' गहरी खामोशी की चादर तान लेती। उसकी आंखें मुंदनी शुरू हो जातीं। दिन भर की थकान उसके और सनी के बीच दीवार बनकर खड़ी हो जाती। फोन पर ललिता की उंगलियों की गिरफ्त ढीली पड़ते ही फोन हाथ की पकड़ से छूटकर तकिए पर या तकिए से फिसलकर नीचे गिर जाता। ललिता बेसुध सो जाती या थकान उसे अपनी गिरफ्त में ले लेती।

"ललिता...ललिता सो गई क्या?" सनी पुकारता पर उसकी बातें किसी अंधे कुंए में अनसुनी होकर चित्त हो जातीं। कुछ देर इंतजार के बाद ललिता की सांस के साथ तेज होते खर्राटों की आवाज पाकर निराश सनी फोन पटककर सो जाता। अगली सुबह अक्सर ललिता के सॉरी, गुडमार्निंग मैसेज से ही होती। पूरे हफ्ते में एक बार मिलने के लिए सौ जतन दोनों अपनी ओर से करते। ललिता के पापा और भाई के पहरे से बच निकलना कोई हंसी-खेल नहीं था। तेजी से बनता-बिगड़ता कार्यक्रम आखिरकार जब बन जाता तो दोनों पहले के दिनों के प्यार को जीने की पूरी कोशिश करते। रंगों से मचलता आसमान जमीन पर उतरने को बेताब रहता। उनका मन करता काश ये समय यहीं ठहर जाए।

"अब रहा नहीं जाता ललिता! आजा सब छोड़-छाड़कर।" ललिता के हाथों को कसकर पकड़े हुए सनी अपना मन खोलकर रख देता।

"पहले अपने घर वालों को तो मनाओ। कम से कम एक का परिवार तो सहारा बने।" ललिता मुस्कुराती हुई सनी की दुखती रग पर हाथ रख देती।

"हाँ अपने ससुर से तो मुझे कोई उम्मीद नहीं। सास तो फिर भी देखकर अनदेखा कर देती है पर ससुर का बस चले तो मुझे जिंदा निगल जाए।" बड़ी-बड़ी आंखें निकालता हुआ सनी, ललिता के पापा की सूरत और भाव को अपने चेहरे पर पूरा उतार लाने की कोशिश में लग जाता। दोनों खूब ठहाका लगाते और सप्ताह की बंदिश को पीछे छोड़ देते। पर हर सप्ताह एक-सा कहाँ होता उनके लिए। नाकाम सप्ताह की उदासी बेहद लंबी चलती। सप्ताह में एक दिन की छुट्टी में सनी घर के काम निबटाता और ललिता घर के कामों के साथ अपने शरीर की थकान उतारती। उस दिन मम्मी उसकी खूब सेवा करतीं। नया सप्ताह फिर बहुत-से काम लिए होता। पापा के कड़े पहरे के नीचे सावधान ललिता ने हर कोशिश की थी सनी और उसके रिश्ते की उन्हें भनक न लगे पर होने वाली बात होकर रही। पापा की कड़कती आवाज़ ने ललिता के कानों में पिघलता सीसा घोल दिया। आग उगलती पापा की आंखों से भी वह आज भी डरी पर अपने चेहरे पर अनजानेपन के भाव लाकर उसने सवालिया निगाह से पापा को देखा।

"तू बाज नहीं आई अपनी हरकतों से। सब पता है क्या गुल खिला रही है उस नीच-कमीन के साथ। मुझे बेवकूफ समझा है तूने?" पापा ने बिना किसी भूमिका के दो-टूक बात करके अपनी नापसंदगी और कड़ा एतराज ललिता पर जाहिर कर दिया।

"पापा! वो नीच-कमीन है तो हम भी कौन-से..." आज जाने कैसे ललिता में सवाल पूछने की हिम्मत आ गई।

"जबान लड़ाती है, उनकी बराबरी हमसे कर रही है तू? हमारी पांव की धोवन भी नहीं...हमारी गिनती अगड़ों में है। समझी? बड़ी आई हम भी वाली...उनका बेटा कमाने लगा, दो पैसे घर में आ गए तो औकात भूल गए। तौर-तरीका भूल गए?" सनी के परिवार को तमाम भद्दी गालियाँ देते ललिता के पापा की आवाज़ बाहर तक बेरोकटोक जा रही थी। ललिता जानती थी कि ये मसला जरूर सर उठाएगा लेकिन जिस मान की बात उसके पापा कर रहे थे वहाँ जातिगत अभिमान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। पापा की चीख-चिल्लाहट घर के बाहर निकल गई। शुक्रवार का दिन था। सारी गली आने वाली छुट्टी के आनंद में कल्पना की उड़ान भर रही थी कि अचानक शोर उठा। सनी के घर के बाहर उठे शोर से गली नए तमाशे की ओर बढ़ चली।

"लड़का संभाला नहीं जाता तुमसे? जब देखो हमारी लड़की को फोन करके परेशान करता है? संभाल लो उसे वरना ठीक नहीं होगा। कहे देता हूँ।" ललिता का फोन चैक करने के बाद यह बवाल घर से शुरू हुआ तो सनी के दरवाजे चढ़कर ही माना।

"क्यूं तुम्हारी लड़की क्या दोदिनी बच्ची है? इतनी चिंता है तो उसे बांधकर रखो घर में।" सनी के पापा और भाई भी चुप नहीं रहे। आग में ऐसा घी पड़ा कि दोनों के प्यार का आसमान धुएं की कालिमा से भर गया। गली भर में तीन गुट बन गए। एक गुट ललिता के पापा का हितू तो दूसरा सनी के परिवार का। तीसरा गुट हमेशा से चुस्त, मुंहदेखी करने वाला। अब ललिता के जीवन पर बंदिशें और बढ़ गई थीं। सुबह मॉल तक पापा छोड़ते और शाम को छोटा भाई उसे लेने आता। पापा के आदेश पर मम्मी अब ललिता के कमरे में ही सोने लगीं तो फोन का सहारा भी छिन गया। बड़ी मुश्किल से कभी-कभार ही कोई मौका ललिता के हाथ आता। सनी की खाट भी उसके भाईयों और पिता ने खड़ी कर दी थी। उनके लिए ललिता के परिवार वालों से रिश्ता करना नामुमकिन था और फिर ललिता के पापा ने गली भर में उनके घर की ऐसी थू-थू की थी कि अब चाहकर भी इस थूक को चाटना आसान नहीं था।

दुख के सैलाब में गोते खाती ललिता नौकरी के कुछ ही महीनों बाद अपने और सनी के उजले भविष्य के आईने को धुंधला पाती। उसे लगता जैसे आईने के बीच एक लहर-सी गुजरने लगी है जहाँ कई बार सनी की आकृति बड़ी होती-होती एकदम तिरछी होकर ललिता के अक्स को मिटा देती है तो कभी उसकी खुद की आकृति के पीछे सनी गुम हो जाता है। मन उमंग से खाली हो तो काम में कैसे लगे? नौकरी आजकल उसे एक गति, एक ध्वनि और एक लय में भागती बोरियत से भरी मशीन की तरह लग रही थी। नौकरी जिसमें या तो थकान से बोरियत पैदा हो गई थी या रूटीनी बोरियत से पहाड़ सी भारी थकान। ये अबूझ मसला उसकी समझ से परे था। लंच टाईम में कांउटर के अन्य लड़के-लड़कियों से पहले जी खोलकर बतियाती ललिता अब मुर्झाने लगी थी। जैसे-तैसे खाना निगल के थोड़ी देर को शो-रूम से बाहर आकर कभी छत या कभी बेसमेंट में चली जाती। छत पर आसमान को देखती तो आसमान आजकल उसे अपनी पहुँच से दूर लगता। आसमान बहुत ऊँचा था और सारे रंग गायब। सनी से बात फोन पर बतिया लेने के बाद इस भागती-दौड़ती दुनिया के बीच वह ठहरी-ठिठकी दिखाई देती। अक्सर छत से नीचे आते हुए वह बूढ़े लिफ्टमैन को देखती। उसे महसूस होता लिफ्टमैन और उसके चेहरे में ऐसा कुछ तो है जो बहुत कुछ मिलता-जुलता है। ललिता बहुत गौर

से देखती पर पहचान नहीं पाती। एक दिन लंच की फुर्सत में ऐसे ही उसने लिफ्टमैन से पूछा–

"अंकल! आप थक नहीं जाते हो इस नौकरी में?" ललिता जानना चाहती थी कि थकान का रिश्ता तन से जुड़ा है या मन से? थकान उसके जिस्म की हर नस में पैठती जा रही थी। रात-दिन थकान ही जैसे उसकी चिंता का सबब बन गई थी। वह समझ नहीं पा रही थी कि इतनी थकान इतनी कम उम्र में उसमें कहाँ से भर गई?

आठ से दस लोगों के लिए लगी इस लिफ्ट में पहली से तीसरी मंजिल के साथ-साथ तीन लेवल की पार्किंग भी थी। शहर के लोगों सहित साथ सटे शहरों के ग्राहक भी घूमते-घामते यहाँ चले आते थे। पार्किंग में गाड़ियों की कतारों का सिलसिला चलता रहता। अनेक ब्रांड्स के स्टोर्स वाले इस मॉल में बड़ा सपाट नाता था ग्राहकों का और लिफ्ट में ग्राहक को उसकी मनचाही जगह पहुँचाते लिफ्टमैन का। अनेक नौकरियों के अनुभवों से सफेद बालों के उम्रदराज वृद्ध लिफ्टमैन ने ललिता को घूरा पर वह उसकी उम्र का मजाक उड़ाते हुए जरा नहीं हंसा। उसने कहा थकूंगा तो परिवार कैसे पालूँगा?"

"फिर भी..." ललिता आज उसका सच जान लेने को आमादा थी।

वह खामोश रहा। ललिता को कोई जल्दी नहीं थी। ग्राहक चढ़-उतर रहे थे। लिफ्ट खाली होने पर उसने फिर बात छेड़ी–"ये स्टूल आपको बैठने के लिए मिला है?" स्टील के छोटे से असुविधाजनक स्टूल की ओर आंख के इशारे से ललिता ने पूछा। फिर धीमी आवाज में बोली-"हमें तो यह भी नहीं मिलता। बैठने की परमीशन ही नहीं।" दुख जब साझा होते हैं तो तहा-छिपाकर रखा फोड़ा देर-सबेर फूट ही जाता है। लिफ्टमैन ने उड़ती-सी एक नजर स्टूल पर डाली और ठंडी आह के साथ कहा–

"स्टूल तो है पर किस काम का? यहाँ तो हर आदमी के लिफ्ट में घुसने पर उसका स्वागत करना है-गुड मार्निंग सर, गुड ऑफ्टर नून मैडम, गुड ईविनिंग सर। खड़े-खड़े हर किसी को सलाम ठोकता हूँ पर कभी सामने वाले के कान नहीं होते तो कभी इस चकाचौंध में मैं दिखता ही नहीं।" एक ठंडी आह के बाद हंसते हुए वे फिर बोले–"मुझसे अच्छा तो ये स्टूल है जो एक ही जगह मजे से पड़ा रहता है। दिन भर में ऐसा खुशनसीब समय आता ही कहाँ है जब मैं इत्मीनान से इस पर बैठ सकूं। डर ही लगता है कहीं कोई शिकायत हो गई तो नौकरी से हाथ धो बैठूँगा।"

"बारह घंटे बाद घर जाकर आपको कितना चैन मिलता होगा?"

"चैन? कहाँ बेटा! घर पहुँचते-पहुँचते बेहाल शरीर बिस्तर ढूँढने लगता है। न बीबी-बच्चों की बात सुहाती है न खाना। बीबी रोटी-सब्जी परोस देती है मैं खाकर लेट जाता हूँ। कितना समय हो गया खाने में कोई स्वाद नहीं आता...थकान से बोझिल शरीर को मरी नींद भी नहीं आती। सुबह से खड़े-खड़े पैर सूज जाते हैं और सबसे ज्यादा दर्द करते हैं कंधे। कंधों से रीढ़ की हड्डी में उतरता हुआ दर्द जमकर पत्थर हो जाता है। सुबह से रात तक खड़े-खड़े कंधों और रीढ़ की हड्डी में अनगिनत सुईयाँ चुभकर हमला बोल देती हैं फिर पूरी रात कराहते रहो ये हमला कहाँ रूकता है? रात भर ऐसा लगता है दमघोंटू लिफ्ट में ही बंद हूँ।"

लिफ्ट वाले अंकल की बात सुनकर ललिता ने अपनी थकान के अनेक भेद जान लिए थे। उसने वॉश रूम में मुंह धोते हुए अपनी शक्ल को गौर से देखा। वह ठिठक गई। लिफ्ट वाले अंकल के दुख का एक रेशा उसके चेहरे पर भी चस्पा था। वॉश रूम से अपने काउंटर तक आते हुए ललिता की नजर उसी फ्लोर वाले फर्नीचर शोरूम पर पड़ी। वहाँ रंग-बिरंगे गुदगुदे कुशन की शीशे सी चमकती पॉलिश वाली नई कुर्सियाँ लाई जा रही थीं। उन्हें देखकर अचानक उसके पैरों का दर्द और बढ़ गया। अगल-बगल के कांउटर वाले सेल्स के लोगों, बिलिंग स्टाफ, सिक्योरिटी स्टाफ में से ललिता जिनके भी करीब थी उनकी हालत उसकी हालत से जुदा न थी। ममता, जुनैद,रानो, सुशील और ऐसे न जाने कितने ही लोग थे जो घंटों खड़े रहने से अनेक शारीरिक कष्ट और मानसिक यातना झेल रहे थे। कुछ दिन पहले ही तो ममता ने सबको सावधान किया था–

"पैरों में दर्द है तो सह लो। पेन किलर ले लो पर ध्यान रहे भूलकर भी लंच टाईम के अलावा कभी कहीं बैठना नहीं। ये जो सीसी टीवी कैमरे लगे हैं न ये ग्राहकों पर नजर रखने के लिए नहीं तुम पर नजर रखने के इरादे से ही लगाए गए हैं।"

"यार! हद है ये तो। इंसान हैं कोई मशीन तो नहीं...और मशीन से भी लगातार काम लोगे तो घर्र-घर्र-ररर करके बैठ नहीं जाएगी? फिर कुछ पल आराम से बैठना क्या इतना बड़ा गुनाह है? यहाँ इतनी लेडीज़ हैं उन्हें देखो। ये रानो प्रेग्नेंट है इसे कुछ हो-हवा गया तो कौन होगा जिम्मेदार?" ललिता तैश में आ गई।

"हाँ भई! जहाँ लेडीज़ वहाँ परेशानियाँ ही परेशानियाँ हैं।" साथ खड़े कमल और प्रिंस मजाक उड़ाते हंसने लगे।

"इसमें हँसने की क्या बात है? हमारी हर परेशानी आप लोगों को झूठी ही क्यों लगती है?" ललिता को उनकी हंसी अखर गई।

"सुशील! भाई मुझे तो बार-बार यूरिनरी इंफैक्शन हो जाता है और कांउटर से ज्यादा देर के लिए ब्रेक भी नहीं ले सकती।" रानो की बात से उसकी तकलीफ साफ झलक रही थी। सबके दुख एक ही से थे जिनकी कहीं कोई सुनवाई नहीं थी।

"परेशानी तो हमें भी होती है ये अलग बात है कुछ ऐसे मर्द हैं जिन्हें दर्द नहीं होता।" जुनैद का इशारा प्रिंस और कमल की ओर था। "सालों से एक ही खड़े रहते काम करने से पैरों की नसें दर्द करते-करते बेजान हो रही हैं। डॉक्टर कहते हैं वेरिकोज़ वेन की समस्या है। हल भी आसान नहीं। अभी तो चल रही है जिंदगी की गाड़ी पर आगे? जुनैद की आवाज़ दर्द से भरी थी।

"मैं तो यहाँ सबसे नयी हूँ फिर भी मेरी और आपकी एक-सी कहानी है। दिन भर खड़े रहने की बात याद आते ही स्टोर आने की उमंग पर पानी फिरने लगा है। पैरों की सूजन और दर्द से बेहाल रहती हूँ। रोज रात को पेन किलर लेना पड़ता है। यहाँ आती हूँ तो मन करता है फर्नीचर स्टोर में रखी सारी कुर्सियाँ ले आऊँ और हम उन पर इत्मीनान से बैठें।" ललिता ने कहा तो सबकी आँखें चमक उठीं। दर्द कुर्सी और आराम का समीकरण सबके लिए एकदम साफ था।

ललिता के जी में आता सनी से पूछकर देखे सारे दिन की मेहनत के बाद भी ललिता से बात करते हुए कहाँ जाती है उसकी थकान? क्या उसके पैरों में दर्द नहीं होता? क्या रात में उसके कंधों से उठता दर्द का

सैलाब रिसते हुए रीढ़ की हड्डी को सुन्न नहीं करता? पर न जाने क्यों ललिता की हिम्मत जवाब दे जाती। सारे दिन की मशक्कत के बाद बड़ी कोशिश से सबकी नजर बचाकर हाथ आए दो-चार हसीन पलों को भी बेकार की बकझक में बर्बाद क्यूं करे। उसे डर भी लगता कि ऐसी बातों से कहीं सनी नाराज न हो जाए। पहले भी रात को ललिता के फोन पर बात करते-करते सो जाने का उसने कई दिन तक मजाक उड़ाया। उसके बाद ललिता ने कोशिश की चाहे थोड़ी देर बात करेगी पर खूब खुश होकर ही। अक्सर ललिता सोचती कि खुशी का यह नाटक आखिर कब तक चलेगा?

इधर सनी, ललिता और अपने बीच की दूरी से बहुत परेशान हो चला था। ललिता के पापा और सनी का परिवार उनकी राह में रोड़ा बने हुए थे तो ललिता का कोई ठोस निर्णय न लेना भी सनी को अखर रहा था। मुसीबत में उसका हमदर्द हितेश ही था पर हितेश, ललिता का विकल्प तो नहीं था। मन का गुबार हितेश पर निकालकर भी सनी उदास रहता ऊपर से घरवालों के ताने आए दिन उसके मन के जख्मों को हरा किए रहते। सनी सोचता उसके और ललिता के प्रेम को किसी की नजर लग गई है। अपने मन में उलझते सवालों को सुलझाते हुए एक दिन उसने हितेश से कहा–"यार! पहले मुझे शक था पर अब यकीन हो चला है कि कोई ऊपरी चक्कर है। ललिता के पापा कुछ समय पहले अपने बाबाजी के यहाँ होकर आए थे। कहते तो रहते हैं कि बड़े सिद्ध महात्मा है। अंतर्यामी टाइप।"

"तो?" हितेश ने सनी को घूरते हुए पूछा।

"तो ये कि उस बाबा की कोई भस्म-भभूत ही ललिता को खिला दी गई । इसीलिए यार! मुझसे मिलने में भी आना-कानी करती है और पहले की तरह फोन पर लंबी बात भी नहीं करती।" सनी के शब्द हताशा से भरे थे पर हितेश के चेहरे पर एक पल की तिलमिलाहट के बाद एक हँसी फूटी। अपनी हँसी को बिना दबाए उसने सनी के कंधे पर हाथ रखा और बोला–

"अबे! तुझे अगर ऐसा ही लगता है कि किसी बावा-वाबा के खिलाने-पिलाने से ललिता बदल गई तो तू भाई ऐसा कर तू ललिता को उस सिद्ध बाबा से भी बड़े बाबा की भस्म-भभूत खिला दे। फिर तो उस पर तेरा ही जादू चलेगा। पुराना जादू बेअसर हो जाएगा। हर गली-नुक्कड़ पर बड़े-बड़े सिद्ध योगी बैठे माला जप रहे हैं किसी को भी पकड़ ले।"

"यार! तुझसे कुछ कहना ही बेकार है।" सनी उदास हो गया।

"गधे! बोलने से पहले कुछ तो सोचा कर। ललिता पढ़ी-लिखी लड़की है और तू भी अनपढ़ नहीं है। एक तरफ तो प्रेम का झंडा उठाकर क्रांति करने की सोच रहा है और दूसरी तरफ इतनी दकियानूसी बात?" हितेश ने सनी को झकझोरा।

"तू नहीं समझता। माना तेरा विश्वास इन सब पर नहीं है पर औरों का तो है न? मुझे नहीं लगता अब हमारा निबाह हो पाएगा।" सनी अड़ा रहा।

"क्या निबाह नहीं हो पाएगा? अभी से हिम्मत हार गया ? साफ-साफ बता तुझे ललिता पर भरोसा है या भस्म-भभूत पर?" हितेश ने सवालों की झड़ी लगा दी।

"यार! ये कैसा सवाल है...भरोसा तो है पर..." अबकी सनी कुछ संयमित मुद्रा में बोला।

"पर को गटर में डाल और उसकी हालत समझ। तेरे और उसके परिवार की तना-तनी कम है क्या? उस पर जाने क्या गुजर रही होगी। जब मौका मिले बात कर उससे। भरोसा दिला। उसकी सुन अपनी सुना। चार दिन की जिंदगी में एक फैसला तो सही से निभा।" हितेश ने सनी को चेताया। सनी की हल्की सी हूँ सुनकर हितेश ने उसे गले लगाया–"यार! चिंता न कर मैं हूँ हरदम तेरे साथ। देख लेंगे अपन दोनों।" अकेलेपन में हितेश की दृढ़ता ने सनी और ललिता के बीच पैदा हो रही दूरी के जंगल में प्यार की मधुर तान छेड़ दी। उस रात सनी करवट बदलता रहा। कि बस अगले दिन लंच में ललिता के दफ्तर जाकर उसे चौंका देगा। आसमान के रंग धीरे-धीरे लौट रहे थे।

ललिता की सुबह फिर से पापा की कड़ी नजर और सख्त प्रवचनों के साथ शुरू हुई। ये प्रवचन धर्म और जाति की रक्षा से जुड़े थे। लड़की की मर्यादा और परिवार के संस्कारों से जुड़े थे। पापा बोलते जा रहे थे और ललिता नाश्ता करते हुए उनकी ओर देखे जा रही थी। कुछ समय बाद उसे पापा के शब्द सुनाई देने बंद हो गए। उनके होंठ कुछ बड़बड़ाए जा रहे थे पर ललिता तक शब्द नहीं पहुँच रहे थे। वह खुद से सवाल करने लगी-यदि पापा इतने ही संस्कारी हैं तो इंसानों से नफरत क्यूं करते हैं? यदि इतने ही धार्मिक हैं तो लोगों पर अविश्वास-अनास्था क्यूं? वह लगातार पापा को घूर रही थी। एक सवाल फिर तनकर खड़ा हो गया। पापा को लड़की की मर्यादा का इतना ख्याल है तो क्यूं नहीं छुड़वा देते उसकी नौकरी? आखिर इस नौकरी में उसे मिलता ही क्या है? आने-जाने का किराया और कुछ ढंग के कपड़े। वो भी नौकरी के लिए ही। महीने भर की कड़ी कमाई तो पापा के हाथ चली जाती है और फिर सारे महीने ललिता पापा के आगे किसी न किसी जरूरत के लिए हाथ फैलाए रहती है। पूरे महीने की मशक्कत के बाद उसके हिस्से आती है– थकान, थकान और सिर्फ थकान।

आज मॉल पहुँचकर ललिता जैसे ही लिफ्ट में घुसी अंकल नदारद थे अलबत्ता स्टूल अपनी जगह सलामत था। कभी छुट्टी न लेने वाले अंकल को न पाकर ललिता परेशान हुई। काम के दौरान भी उसने सुपरवाइज़र से अंकल के न आने का कारण पूछा तो पता चला दो दिन नहीं आएँगे। दो दिन न आने का सीधा मतलब दो दिन के पैसे का नुकसान था। अंकल की फिक्र के साथ कांउटर पर ग्राहकों को निबटाते हुए अचानक उसके कान एक पुराने गीत से टकराए। गीत की दिशा में उसकी आँखें घूमीं तो उसने पाया एक बुजुर्ग व्यक्ति एक कोने में अपने मोबाइल पर कुछ देख-सुन रहा था। काम के दौरान ही एक भरपूर नजर ललिता ने उस व्यक्ति पर डाली और अचानक हाथ रोका। फिर सिर उठाकर पूरे फ्लोर पर नजर दौड़ाई। कहीं कोई अंतर नहीं था। उसने सारे काउंटर देखे। बार-बार एक ही बात। कल तक ललिता की जो चिंता सेल्समैन, गार्ड्स, लिफ्टमैन को लेकर थी आज उसका सिरा ग्राहकों से भी जुड़ गया। बुजुर्गवार हों या जवान, अधेड़ या बच्चे सब या तो खड़े थे या घूमफिर रहे थे। किसी काउंटर पर उनके बैठने के लिए कुर्सियाँ नहीं थीं। कुछ बच्चे थककर काठ के मैनिक्यिन के नीचे बने चबूतरों पर आधे-अधूरे बैठे थे। जवान लोग थककर स्टोर या मॉल में ही किसी-किसी कोने में जमीन पर अपने थैलों के संग बैठ दिखते थे। कुर्सियों वाले शोरूम के ग्राहक जरूर सुखी थे कि किसी

कुर्सी पर बैठकर दो घड़ी आराम कर लें। मॉल के किसी भी हिस्से में पैसा लुटाने वाले ग्राहकों के लिए बैठने की कोई व्यवस्था नहीं थी। ललिता को लगा मॉल में आने वाले ग्राहक भी जैसे अपने अधिकार और सुविधाओं को लेकर सजग नहीं रहे। वे सब कुछ भूल रहे थे पर उन्हें वो गार्ड्स और सेल्समैन जरूर याद रहते थे जो उनसे उनके मुताबिक अदब से पेश नहीं आते। गार्ड्स, लिफ्टमैन, सेल्स के लोग उनका ढंग से स्वागत न करें तो उनकी भौंहें तन जाती थीं।

सुबह से ही मॉल में काफी गहमागहमी थी। फेस्टिवल ऑफर के तहत चीजों पर भारी छूट का ऑफर घोषित किया गया था। सुबह से लगातार काम करते हुए ललिता को वॉशरूम जाकर फ्रेश होने का मौका भी नहीं मिला। कहीं प्रेशर और अधिक न बन जाए इस डर से वह पानी भी बहुत कम पी रही थी। ग्राहकों की भीड़ में सर उठाने का मौका न था। पैर भी लगातार खड़े-खड़े बेतरह टूट रहे थे। टीसते पैर बैठने की भीख मांग रहे थे। ऊपर से हर ग्राहक की बातों पर दर्द को छिपाकर जबरन हंसते हुए जवाब देना भी ललिता को अब मुश्किल लग रहा था। सारे मॉल में शोर ही शोर था कि अचानक उसके कांउटर पर एक महिला जोर से चीखी–

"आखिर यहाँ कब तक खड़े रहना होगा? इतनी देर से एक ब्रेस्लेट मांग रही हूं कोई पहाड़ नहीं।"

"सॉरी मैडम! बस इनके बाद अब आपको ही देती हूँ। नया कलैक्शन आया है वह देखेंगी तो खुश हो जाएँगी।"

"इन पर चीखो नहीं तो सुनते कहाँ हैं? नया कलैक्शन... स्टूपिड गर्ल। खामखां मुझे खड़ा किया हुआ है।" महिला पूरे आवेश में आकर जोर से सबको सुनाते हुए ललिता की बेइज्जती करने लगी।

"आपसे सॉरी कहा तो मैडम...प्लीज़ इन्सल्ट मत कीजिए। आपको केवल दो मिनट हुए हैं खड़े हुए हम पूरे दिन खड़े रहकर काम करते हैं।" ललिता के अंतिम शब्द धीमे स्वर में निकले पर कई दिनों से आहत उसके स्वाभिमान ने करवट ली।

"किसने किसकी इनसल्ट की मैं बताती हूँ तुझे।" कहते हुए भद्र महिला और बिफर गई। अचानक होहल्ला मच गया जो किसी भी हालत में स्टोर के माहौल के लिए खतरा था। आनन-फानन में सेल्स सुपरवाइज़र और कई लोग जुट गए। सबसे पहले बज रहे संगीत का वाल्यूम बढ़ाया गया। भद्र महिला के लिए एक नई सेल्सगर्ल को तुरंत बुलाया गया पर महिला आमादा थी कि ललिता बद्तमीजी के लिए माफी मांगे। तनाव बढ़ता चला गया क्योंकि ललिता ने साफ कह दिया कि वो पहले ही माफी मांग चुकी है। रानो, ममता और सुशील, ललिता के पक्ष में खड़े होकर सफाई देने लगे तो भद्र महिला उसे नौकरी से निकाले जाने की मांग पर अड़ गई। बड़ी मुश्किल से महिला को शांत करके काउंटर पर मामला सुलटाया गया पर आज ललिता की पेशी हो गई। उसे चुपचाप काम करने की वार्निंग दी गई जिसमें छिपी हुई धमकी भी थी कि यदि भगवान जैसे कस्टमर्स से उलझी तो उसे नौकरी से निकाला भी जा सकता है। ललिता ने कई बार अपनी सफाई दी पर जब गलती उसकी ही मानी गई तो उसने आज की लीव एप्लीकेशन सुपरवाइज़र की टेबल पर रख दी। वह जानती थी आज की तनख्वाह कट जाएगी चाहे आधे दिन भी उसने पूरी मेहनत क्यों न किया हो। पापा की डाँट अलग खानी पड़ेगी पर आज जैसे उसे कोई परवाह नहीं थी। रानो, ममता और सुशील ने उसे घर जाकर आराम करने की सलाह दी। बेपरवाह ललिता बहुत देर तक बाहर मॉल की सीढ़ियों पर बैठी रही। स्टोर में नौकरी से लेकर आज तक के घटनाक्रम पर विचार करते हुए धीरे-धीरे ललिता को अपने ऊपर हो रहे अन्याय की शक्ल दिखी तो औरों के प्रति हो रहे अन्याय के चेहरे भी दिखने लगे। चेहरों पर दर्द के रंग पहचान में आने लगे। वो चेहरे कभी कुछ कहते भले न हों पर ललिता को उनकी चुप्पियों में चीख सुनाई दी। लिफ्ट वाले अंकल, गारमेंट सैक्शन देखने वाली रानो जो पांच माह के गर्भ में कई बार वॉश रूम भागती, नवविवाहित ममता जिसे सारा दिन खड़े रहकर नौकरी ही नहीं करनी बल्कि नई बहू और घर के दायित्व भी निभाने हैं। पूरे दिन बिलिंग काउंटर पर वेरिकोज़ वेन की समस्या से परेशान जुनैद, लेडीज़ सैक्शन के सुशील सहित न जाने कितने जुनैद, कितनी रानो, कितनी ममता? और न जाने कितने सुशील शहर की राजधानी के, देश के अलग-अलग हिस्सों के, दुनिया के चमचमाते मॉल्स में दस से बारह घंटे तक सब सहते हुए खट रहे हैं। एक अप्राकृतिक स्थिति और एक असहज मुद्रा को विवशता में स्वीकार रहे हैं। कुछ देर बाद उसका दिमाग सुन्न हो गया। उसे न दुनिया का शोर सुनाई दे रहा था न कोई दृश्य दिख रहा था बस यही समझ आ रहा था कि थके हुए पैरों को यहाँ बैठने से सुकून मिल रहा है। मॉल के भीतर काम करने वाले सभी लोग उसे भीतर लगे बेजान मैनीक्वियंस की तरह लग रहे थे। बहुत देर बाद उसने पाया कि कोई उसके कंधे को झकझोर रहा है। आज सनी उसे चौंकाने आया था पर ललिता की सारी बातें सुनकर उसे खुद जोरदार झटका लगा। सनी ने खुद को संभालते हुए ललिता को भी समझाया–

"चल ललिता! आज की शाम तक का समय हमारा है। कई दिनों की कसर आज निकालते हैं। खाएंगे-पियेंगे और खूब बातें करेंगे।" सनी ने ललिता का हाथ थामा और दोनों चल दिए। नज़दीक के रेस्तरां में इत्मीनान से बैठकर ललिता का मन पहले से बेहतर हुआ तो सनी ने पूछा–"तू तो कहती थी नौकरी तेरे मन की है तो फिर ये सब?" सनी ने कंधे उचकाते हुए पूछा। ललिता के खामोश रहने पर सनी ने उसकी हथेली को अपने भरोसे की हथेली से सहलाया और आँखों से फिर सवाल दोहराया। एक ठंडी सांस लेकर ललिता ने चुप्पी तो तोड़ी–

"सनी! पहले मुझे लगता था कि इस दुनिया में मेरा दुख सबसे बड़ा है। पापा की सख्ती, हमारी शादी में अड़चन, तेरी नाराज़गी, नौकरी की थकान और थकान होने पर बैठने का हक न होना... पर एक बात कहूँ पिछले दिनों जिसे भी मैंने करीब से जाना है उसके दुख पहचाने हैं। समझने लगी हूँ कि आँखें खोलकर दूसरों के दुखों को देखने के बाद अपने दुख की दुनिया कितनी छोटी लगती है। इसलिए आज जो भी हुआ ये सब सिर्फ मेरे लिए नहीं है। मेरे स्टोर में अनेक लोग हैं। इस मॉल में अनेक लोग हैं। अनेक मॉल्स में अनेक लोग हैं। तू है, मैं हूँ, ममता दीदी हैं, रानो, जुनैद जाने कितने लोग हैं। सबके साझे दुख हैं।"

"पर तू कोई नेता है जो सबकी लड़ाई लड़ेगी?" सनी सब ध्यान से सुनकर बोला।

"बात नेता की नहीं अधिकार की है। थकान होने पर बैठने की, कुछ देर आराम की स्वाभाविक इच्छा रखना क्या गलत है?" ललिता दृढ़तापूर्वक बोली।

"नहीं नेताजी, ठीक है।"

"देख इस तरह मजाक में न उड़ा मेरी बात। मदद तो करता नहीं बस पापा की तरह तू भी या तो मजाक उड़ा ले या उपदेश दे दे।" ललिता ने उलाहना दिया। सनी कुछ पल ठहरकर बोला–

"तू सही कहती है ललिता। मैं भी तेरे पापा जैसा ही हो चला था। भला हो हितेश का जिसने सब टूटने-छूटने से बचा लिया। ललिता! तू चिंता नहीं कर मैं तेरे हर फैसले में साथ हूँ। चाहे तो हम सलाह-मशविरे के लिए अभी हितेश के पास भी चल सकते हैं।" सनी की बात सुनकर ललिता को बहुत दिनों से साल रही थकान आज हारती हुई महसूस हुई। आदतन उसका हाथ अपने चेहरे पर गया तो चेहरा भी आज उसे कई दिन की चिपचिपाहट के बाद मुलायम महसूस हुआ। दोनों देर तक बातें करते रहे। रंगों से भरा आसमान उन्हें देखकर मुस्कुरा दिया। आज वही पुराने दिनों के ललिता-सनी साथ थे और उनके आस-पास बिखरा था बहुत सारा प्यार जो निर्भय था, निर्द्वंद्व था। बहुत दिनों बाद दोनों के भविष्य का धुंधला पड़ा आईना साफ दिख रहा था उसमें उनके सपनों की शक्ल फिर से उभर रही थी।

उस रात घर लौटकर ललिता को एक क्षण का आराम नहीं था। हितेश से लंबी बात करने के बाद अब उसे ममता, सुशील, रानो, जुनैद उसे सबसे बात करनी थी। सबको समझाना था। कल के लिए तैयार करना था। देर तक चली उसकी बातों से आज घर भर हैरान था। सब देख रहे थे बहुत दिनों बाद थकी-हारी ललिता न जाने कहाँ चली गई थी। पापा ने हमेशा की तरह दखलंदाजी करने कोशिश भी की पर दृढ़ विश्वास से भरी लड़की को देखकर खुद ही सिमट गए। देर रात तक सोने को लेटी ललिता की आंखों में नींद नहीं थी। उसे सुबह का इंतज़ार था। ललिता को बारबार बेचैनी में करवट बदलते देखकर मम्मी ने प्यार से उसके सर पर हाथ रखकर कहा–"ललिता! तू वही करना जो तुझे ठीक जँचे। चाहे नौकरी हो या शादी। तू काठ की गुड़िया नहीं पढ़ी-लिखी, कमाऊ और समझदार लड़की है।" अंधेरे कमरे में मम्मी की आवाज ललिता को सौ वॉट के बल्ब की रौशनी-सी महसूस हुई। मम्मी पर उसे बहुत प्यार आया पर आने वाले कल की उम्मीद में नींद फिर भी कोसों दूर रही।

"ये क्या तरीका है? इस काम की किसी को भी परमीशन नहीं है।" अगले दिन सुबह स्टोर खुलने से पहले सुपरवाइज़र की तेज आवाज़ ने सारे कांउटर्स पर खड़े लोगों को चौकन्ना कर दिया। सुपरवाइजर की आंखें हैरत से भर उठीं स्टोर का नया नजारा देखकर। सुपरवाइजर की फटकार ललिता-रानो के काउंटर से शुरू हुई थी जो बाद में ममता, सुशील और जुनैद के काउंटर सहित कुछ अन्य कांउटर्स पर सुनाई दी। स्टोर के अलग-अलग डिपार्टमेंट्स के लोग भी इस नए नजारे को हैरानी से देख रहे थे। कुछ की हंसी नहीं रूक रही थी तो कुछ की सांसे गले में ही रुक गईं थीं।

"सर! दिन के बारह घंटे में सिर्फ कस्टमर्स के न होने पर ही हम लोग इस कुर्सी का इस्तेमाल करेंगे।" ललिता ने विनम्रता पर चट्टानी दृढ़ता से कहा।

"तुम सब अपनी-अपनी कुर्सियाँ उठाते हो कि नहीं? अभी के अभी इन्हें बाहर रखो। यहाँ काम करना है तो या कुर्सी रहेगी या तुम।" सुपरवाइज़र गरजा। इस गरज के साथ ही स्टोर के कुछ लोग सुपरवाइजर के साथ आ खड़े हुए। वे ललिता एंड कंपनी के खड़े किए बखेड़े से खुद को दूर रखना चाहते थे।

स्टोर का माहौल आज सुबह से ही बदला हुआ था। खलबली ग्राहकों के आने से पहले ही मच गई जब स्टोर में अनेक काउंटर्स पर कुछ लोगों ने शांतिपूर्वक अपनी जगह पर एक फोल्डिंग कुर्सी रख दी। सुबह के समय अपना काउंटर व्यवस्थित करके वह उस पर बैठ गए तो सुपरवाइजर हैरान रह गया। एक नहीं दो नहीं सात-आठ कांउटर्स पर एक-सा नज़ारा देखकर उसकी आंत-पीत जलने लगीं। सुपरवाइजर का गुस्सा ललिता पर फूट पड़ा–"तो तुझे लीडरी का चस्का लगा है। यहाँ नहीं चलेगा ये सब। काम करना है तो ढंग से करो वरना सबको नोटिस देकर फायर कर दिया जाएगा।" सुपरवाइजर ने धमकाया। नोटिस की बात सुनकर अच्छे-अच्छों को सर्दी के इस मौसम में पसीना आ गया। ललिता सहित कुछ लोगों ने अपनी कुर्सी फोल्ड करके नहीं रखीं। कुर्सियाँ बीच-बीच में इस्तेमाल की जाकर सारे दिन स्टोर के कर्मचारियों की लड़ाई को शांतिपूर्वक लड़ती रहीं। कुछ पल बैठकर थकान उतारने के लिए लड़ी जाने वाली यह लड़ाई न मामूली थी और न ही एकाध दिन की बात थी। दो-तीन दिन में सुपरवाइजर के सब्र का प्याला बुरी तरह छलक गया। उसने शो कॉज़ नोटिस तो जारी नहीं किया पर मैनेजर के कानों में सारी बात पहुँचा दी। मैनेजर पहले ही सब जानता था पर वह भी बाढ़ के पानी के उतरने की राह तक रहा था। सुपरवाइजर के भड़काने पर उसने ललिता और उसके साथियों को समझाने के लिए ऑफिस में बुलवाया। कुर्सी में धंसे हुए वह बोला–

"देखिए! ये हमारे स्टोर का तरीका नहीं बल्कि आस-पास किसी भी स्टोर में देखें वहाँ भी सेल्स से जुड़ा कोई भी आदमी कुर्सी पर नहीं बैठता।"

"पहले से जो चला आया करता है वह क्या हमेशा ठीक होता है सर? गलत बात तो गलत ही होती है।" रानो ने कहा तो सुपरवाइजर ने उसे गौर से देखा। पाँच-छह माह का गर्भ उससे छिप नहीं सका।

"फिर भी हर जगह का कोई कायदा होता है।" अबकी मैनेजर के स्वर में समझौते की लय चली आई। कारण साफ था रानो पुरानी एमप्लाई थी फिर प्रेग्नेंट भी। कानूनी कार्यवाही हुई तो मामला उसके पक्ष में भी जा सकता था।

"सर! क्या हमारी मांग गलत है? हम तो काम न होने के दौरान ही बैठने की मांग कर रहे हैं लेकिन आप लोगों को लगता है जैसे हम स्टोर में जगह-जगह लगे पुतले ही हो चुके हैं जिनमें न जान है, न दुख न कोई हरकत और न कोई थकान।" अबकी ललिता ने सीधे और साफ बात कही तो सब को साहस मिला। सुपरवाईजर की भौंहें तन गईं और तनी हुई भौंहों से ही उसने मैनेजर को सांप का फन कुचल देने का इशारा किया।

"देखो! तुम लोग ऐसे ही अड़े रहे तो कल से स्टोर में तुम लोगों की एंट्री बैन हो सकती है। तुम्हें नौकरी पर रहना है या कर दूँ छुट्टी?... बोलो।" इस बार मैनेजर ने सुपरवाईजर की भौंहों के इशारे के अनुरूप कहा।

"सर! आप भी हमारी ही तरह एम्प्लॉई हैं मालिक नहीं। हम

सबकी एक ही मांग है कि काम के समय में कुछ देर हमें बैठने की मोहलत मिले। एक सिटिंग ज़ोन बनाया जाए एमप्लॉईज़ के लिए। बस... इसमें क्या दिक्कत है?" इस बार सुशील, ललिता, रानो और कई आवाजें एक साथ उठ खड़ी हुईं।

"कल से कुर्सी वालों की एंट्री स्टोर में बैन है। कुर्सी आंदोलन खत्म करके सब लोग अपना-अपना काम करें...नेतागिरी में कुछ नहीं रखा है।" इस आदेश के साथ ही स्टोर के तीनों फ्लोर के गार्ड्स को सख्त निर्देश दिया गया कि कल से बिना कुर्सी वाले लोग ही स्टोर में आएंगे। मैनेजर ने ललिता के साथियों को बारी-बारी से बुलाकर ललिता से दूर रहने और सीधी राह पर चलने के लिए समझाया। ललिता को एक बार भी नहीं बुलाया जाना सबको समझ में आ रहा था। लड़ाई की एकमात्र दोषी ललिता बना दी गई थी। बहुत दिनों से चल रही खींचतान का खात्मा लोगों को दिखने लगा। सुरक्षित होकर जो लोग लड़ाई से दूर थे आज उनका ही पक्ष सही साबित हुआ तो उनके चेहरों की खुशी अपनी नमकहलाली पर इतरा बैठी।

कोई भी लड़ाई आसान कहाँ होती है पर लड़ने के क्रम में धीरज और लड़ने के नए तरीके जरूर ईजाद करती चलती है। ललिता खुद से लड़कर एक नई लड़ाई का सलीका सीख रही थी। कल का दिन बेहद निर्णायक होने वाला था। अब तक चली आ रही लड़ाई एक नई दिशा की ओर मुड़ चली थी। यह लड़ाई अब आर-पार की होने वाली थी। इसका नफा-नुकसान एकदम सामने दिख रहा था। आज ललिता ने किसी से एक शब्द नहीं कहा न ही कल की कोई पूर्व तैयारी ही की। सनी को उसने सच बता दिया। सनी ने छुट्टी लेकर हितेश के संग आने का भरोसा दिया। अगली सुबह वह उठी। तैयार हुई। घर से निकली तो कुछ रोज़ की अपनी साथी फोल्डिंग कुर्सी को उसने देखा और फिर उसे उठाकर स्टोर की तरफ बढ़ चली।

"मैडम! आप अंदर नहीं जा सकतीं। साहब का ऑर्डर है।" गार्ड, ललिता की अपेक्षा के अनुरूप कहते हुए दरवाजा रोककर खड़ा हो गया। दो पल को ठिठकी ललिता ने कुर्सी को खोला और गार्ड के बगल में ही बैठ गई। गार्ड की हैरानी का पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया वहीं उस पर नज़र रखे मैनेजर और सुपरवाईजर भी सकते में आ गए पर मामले को कोई तूल न देते हुए वे चुप रहे। धीरे-धीरे एमप्लाई आने शुरू हुए तो दरवाजे पर ललिता को बैठे देखकर चौंके। उनमें से कुछ उस पर हंसे पर कल तक हंसने वाले कुछ लोगों के मन में ललिता के प्रति सहानुभूति उपजी। स्टोर के भीतर हलचल मौजूद थी। आगे क्या होने वाला है यह रहस्य सबके दिमाग में आकार ले चुका था। ललिता अभी तक अकेली बाहर बैठी थी। कस्टमर्स आने लगे तो वे भी उसे घूरकर देख रहे थे। सुपरवाइजर और मैनेजर के मन में खटका हुआ कि ललिता उठकर नारेबाजी न करने लगे। रानो,ममता, सुशील, जुनैद और ललिता के पाँच-छह साथी समय होने के बावजूद आज नहीं आए थे। सुपरवाइजर और मैनेजर सहित कुछ लोगों ने बिना सेना के अकेले सिपाही ललिता पर तरस खाया। दरवाजे के भीतर ऑफिस में ललिता को नोटिस देने का पूरा मन बन चुका था। सुपरवाइजर की बांछे खिल गईं थीं कि मैनेजर के जरिए आज वो ललिता को सबक सिखा पाएगा। तभी दरवाजे पर हरकत हुई। निचले तल के कर्मचारियों की निगाहें ग्लासडोर पर अटक गईं। वहाँ रानो,ममता, सुशील, जुनैद सहित कई लोग अपनी-अपनी कुर्सियों के साथ दिखाई दिए। अब तक अकेली बैठी ललिता के साथ एक पूरा समूह था। आते-जाते लोग उन्हें चौंककर देख रहे थे। थोड़ी देर में सनी और हितेश भी वहाँ पहुँच गए। हितेश ने मांगपत्र को पढ़ा। कुछ जरूरी सुझाव भी दिए। जुनैद ने एक मांगपत्र गार्ड के हाथ अंदर भिजवाया जिस पर काम के दौरान बैठने की विनम्र मांग के साथ उन सबके दस्तखत थे। अंदर फिर एक नई हलचल थी। ग्राहकों की आवाजाही और लड़ाई के इस नए एकजुट रूप को देखकर मैनेजर ने मामला सुलटाने को सही समझा। ललिता को काटकर अकेला करने की उसकी चाल को मात मिली थी।

"ठीक है। आप लोग काम पर लौटें। हम जल्द आपकी मांग पर बात करेंगे।" उसने आश्वासन का लॉलीपॉप थमाया।

"सर! हमारी एप्लीकेशन रिसीव करें और आप जो कह रहे हैं उसे लिखित में दें।" जुनैद की लिखित एप्लीकेशन स्टोर के लोगों को इंसान समझने की अपील कर रही थी।

मैनेजर के पास समाधान की फिलहाल कोई और तरकीब नहीं थी सो उन्होंने खिसियाते हुए सर हिलाया। अपनी कुर्सियाँ उठाए सभी लोग जब स्टोर में घुसे तो बहुत-सी आंखें उनकी लड़ाई के सम्मान में गर्व से चमकीं। काठ के पुतलों में इंसानी हरकत दिखने लगी। उन्हें समझ आ गया था कि ये लंबी लड़ाई अब अकेले लड़ी जाने वाली नहीं है। लड़ाई का मोर्चा उनकी तरफ भी खुल गया है। ये लड़ाई उनके लिए भी है।

शाम को मॉल से निकलकर ललिता ने भाई को फोन किया कि आज वह उसे लेने न आए। सनी और हितेश के साथ ललिता अपने पुराने पसंदीदा रेस्तरां गई। आज की जीत का जश्न मनना जरूरी था।

"कैसे तुम्हारा शुक्रिया करूँ हितेश। तुमने इस लड़ाई को फैसलाकुन अंजाम पर पहुँचाया है।" ललिता ने कृतज्ञ भाव से कहा।

"लड़ाई अभी खत्म कहाँ हुई है ललिता वह तो चलेगी पर अब लड़ाई में तुम सब भी एक बुलंद आवाज़ हो।" हितेश ने जवाब दिया।

"तुम और सनी न होते तो..."

"ललिता! सच्चाई तो ये है कि बहुत से लोग अलग-अलग जगहों पर ऐसी लड़ाई लड़ रहे हैं। कुछ जीत भी गए हैं तो कुछ डटे हुए हैं। तुम लोग भी डटे रहो।" हितेश के शब्दों ने ललिता को जिंदादिली से भर दिया।

"लो भई! अब तो कुर्सी भी मिल जाएगी नेताजी को पर हमें क्या मिलेगा?" सनी ने मुस्कुराते हुए ललिता को देखा।

"ललिता! ये तो तुम्हारी ज्यादती है। मेरा दोस्त कबसे तुम्हारे इंतजार में बैठा है इसकी शादी की अर्जी कब मंजूर होगी?

"मैंने कब कहा कि शादी नहीं करूँगी। जरूर करूँगी। मेरे और इसके पापा के लाख न चाहने पर भी करूँगी।" ललिता ने यूँ कहा जैसे वह सनी से नहीं खुद से पक्का वादा कर रही हो।

नीला आकाश आसमानी से गुलाबी, गुलाबी से जामुनी और फिरोज़ी होता जा रहा था।

•

उत्तरकथा

गोदान की संतानें

रवीन्द्र कुमार
(ऑरेगान, अमेरिका में शोधरत)

(1936, अक्टूबर 8 प्रेमचंद का निधन। इन 90 वर्षों में भारत आजाद होकर अपना 80 वां स्वतंत्रता दिवस मना चुका है। देखें, प्रेमचंद के महान उपन्यास 'गोदान' के पात्र आज क्या कर रहे हैं।)

पूस की हाड़ कंपाने वाली रात में सेमरी गाँव के मुहाने पर प्लास्टिक की बोरियों, थर्माकोल की प्लेटों और फटे टायरों से उठता ज़हरीला काला धुआँ अलाव बनकर सुलग रहा है। इस दमघोंटू धुएँ के पीछे फटी चादर लपेटे बैठा इंसान कोई अचरज भरा काल्पनिक पात्र नहीं है। नब्बे साल पहले 1936 में जो होरी पचास की उम्र में दम तोड़ गया था, यह उसका परपोता है, साठ साल का होरी महतो। विरासत में इसे न तो राय साहब की तरह रियासत मिली, न खन्ना की तरह शेयर, इसके हिस्से में बस परदादा का नाम आया और उनका कभी न चुकने वाला कर्ज़।

सुबह के सात बज चुके हैं और यह साठ बरस का होरी महतो सेमरी के 'जन सेवा केंद्र' के बाहर कतार में खड़ा पाँव पटक रहा है। उसकी आँखें पूस के कोहरे से नहीं, बल्कि चार हज़ार रुपये वाले एक सेकेंड-हैंड स्मार्टफोन की तेज़ नीली रोशनी से पथरा गई हैं। उसके हाथ में नया प्लास्टिक का डिजिटल राशन कार्ड है, लेकिन पीडीएस केंद्र की पुरानी टेबल पर बैठा लड़का, जो गाँव के पुश्तैनी साहूकार मंगरू साह का परपोता है, बार-बार उस छोटी-सी बायोमेट्रिक मशीन की काँच की पट्टी को अपनी कमीज़ की आस्तीन से पोंछता है और झुँझलाकर चिल्लाता है,

"अरे होरी बाबा, अंगूठा ज़रा दबा के टिकाओ! मशीन तुम्हारी पहचान ही नहीं पकड़ रही।"

होरी अपनी घिसी हुई, बदरंग उँगली को उस शीशे की लाल बत्ती पर पटकता है। मशीन से एक ठंडी, बेमुरव्वत इलेक्ट्रॉनिक आवाज़ निकलती है, 'प्रमाणीकरण असफल'।

जीवन भर हल की मूठ दबाकर, कुदाल चलाकर, कंकड़ तोड़कर और ज़मीन की छाती से अन्न खींचकर होरी की उँगलियों के निशान घिस चुके हैं। जिस शारीरिक श्रम से इस परिवार ने नब्बे सालों तक इस देश के अन्न भंडार भरे, उसी श्रम ने उसकी उँगलियों की त्वचा को छीलकर उसकी नागरिक पहचान का जैविक सबूत मिटा दिया है। जिस राज्य का वह नागरिक है, उसका डिजिटल तंत्र अब होरी के मुँह पर कह देता है कि तुम नागरिक नहीं, केवल एक 'डेटा एरर' हो। लोकतंत्र ने होरी से उसका अधिकार छीनकर उसे एक 'लाभार्थी' में बदल दिया है, एक ऐसा याचक, जिसे हर महीने पाँच किलो मुफ़्त अनाज का उपकार देकर यह अहसास कराया जाता है कि उसकी साँसें राज्य की कृपा पर चल रही हैं। और मंगरू साह का परपोता हर बार बायोमेट्रिक स्लॉट री-बुक करने और ई-केवाईसी के नाम पर होरी की फटी धोती की खूंट से पचास-पचास रुपये का नोट ऐंठ लेता है।

2

सेमरी की शक्ल पहली नज़र में बदल गई लगती है। मिट्टी के कच्चे छप्परों पर नीली प्लास्टिक की तिरपालें कस दी गई हैं, कुछ लोगों के पीएम आवास योजना के तहत कच्चे-पक्के घर बन गए हैं, उन घरों की छतों पर ज़ंग खाए पुराने डिश-एंटीना और लहलहाते 5-जी टावरों के साथ सोलर पैनलों की परछाइयाँ हैं, और खंभों पर लटकती फाइबर-ऑप्टिकल केबलें हर मोड़ पर आसमान में साँपों के गुच्छों जैसी उलझी मालूम होती हैं। यह सब डिजिटल झाड़-झंखाड़ पूरे गाँव को अचरज भरा डिजिटल जाल जैसा सौंदर्य प्रदान करता है। लेकिन इस तकनीकी मुलम्मे के नीचे शोषण का पुराना सामंती और जातिगत ढाँचा और अधिक हिंसक, वैश्विक, राजनीतिक तथा संस्थागत हो चुका है।

राय साहब अमरपाल सिंह का कुनबा अब केवल सेमरी की ज़मींदारी तक सीमित नहीं रहा है, उसका दायरा लखनऊ से लेकर न्यूयॉर्क तक फैल चुका है। राय साहब का एक परपोता क्षेत्रीय सांसद और सत्तारूढ़ दल का प्रांतीय कोषाध्यक्ष है। उसने कॉरपोरेट इलेक्टोरल बॉन्ड के ज़रिये अपनी राजनीतिक स्थिति इतनी अभेद्य बना ली है कि अब उसे गाँव-गाँव जाकर वोट माँगने की ज़रूरत नहीं पड़ती। वह हाईवे के किनारे किसानों की अधिग्रहित ज़मीनों पर 'ग्रीन एनर्जी' और 'सोलर पार्क' के नाम पर कॉरपोरेट कंपनियों को ज़मीनें दिलवाता है और खुद कुछ कंपनियों में शेयरधारक है। वह खादी का महँगा कुर्ता पहनकर टी.वी. कैमरों के सामने 'विकसित भारत', 'जीडीपी ग्रोथ' और 'कॉरपोरेट एग्रो-इकोनॉमी' पर भाषण देने के लिए प्राइम टाइम टी. वी. डिबेट में बहैसियत पैनेलिस्ट बुलाया जाता है।

लेकिन राय साहब का दूसरा परपोता देश छोड़ चुका है। वह अमेरिका के एक आइवी लीग विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र का प्रोफ़ेसर बन चुका है। वह न्यूयॉर्क के वातानुकूलित कमरों में साउथ एशिया पर कई अंडरग्रेजुएट और ग्रेजुएट कोर्स पढ़ाता है। उसके मार्गदर्शन में पीएच। डी। करने वाले 7 शोधार्थी हैं जिनमें से 3 बंगाली भद्रलोक हैं और 4 उत्तर भारत के अलग-अलग शहरों से हैं, सब के सब अपर कास्ट हैं। उनमें एक समानता है, अमेरिका आने से पहले सबकी पढ़ाई दिल्ली स्थित जे.एन.यू. से हुई थी, जहाँ से प्रोफ़ेसर-पोता खुद पढ़ा था और उसे उस संस्थान और वहाँ से आने वाले छात्रों से विशेष स्नेह था।

उसने एक बहुत ही बहुप्रशंसित पुस्तक किताब लिखी है जिसे ऑक्सफोर्ड प्रेस ने छापी थी और जिसे कई अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त हो चुके हैं, जिसका नाम है, 'भारतीय ग्रामीण संरचना में सबअल्टर्न प्रतिरोध और जातिगत आधिपत्य'। वह अपने फ्री-टाइम में कविताएँ और काव्यात्मक निबंध भी प्रकाशित कराता है। पिछले साल उसे एक अंतरराष्ट्रीय फाउंडेशन से 3 लाख डॉलर की 'क्लाइमेट जस्टिस' फ़ेलोशिप मिली थी। वह अमेरिका, यूरोप, लैटिन अमेरिका, साउथ ईस्ट एशिया और पता नहीं कहाँ-कहाँ सेमिनार में भाग लेने जाता रहता है। उसकी एक ख़ास बात यह है कि वह अपने अकादमिक पेपर को एक बहुत ही भावुक कविता पर ख़त्म करता है, जिसका विषय लगभग हमेशा गाँव-देहात के किसान और दलित होते हैं। मगर भारत में बैठा उसका सांसद भाई सेमरी में किसानों के खेत की नाप-जोख करवाकर उसे 'ग्रीन-कॉरिडोर' परियोजना में कौड़ियों के भाव नीलाम करवाता है।

प्रोफ़ेसर मेहता और मिस मालती की मृत्यु हो चुकी है, मगर उनके पोते-पोतियाँ फल-फूल रहे हैं। मेहता जी का एक पोता भी अमेरिका के एक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय के साउथ एशियन डिपार्टमेंट में एम.ए। की डिग्री पूरी कर रहा है और एक बेहद लोकप्रिय 'डिजिटल मीडिया पोर्टल' तथा प्रगतिशील थिंक-टैंक चलाता है। यह पोर्टल इंटरनेट पर वंचितों, दलितों और किसानों के अधिकारों पर तीखे संपादकीय छापता है और बहुराष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठनों से मिलने वाले 'सीएसआर फंड' पर फलता-फूलता है।

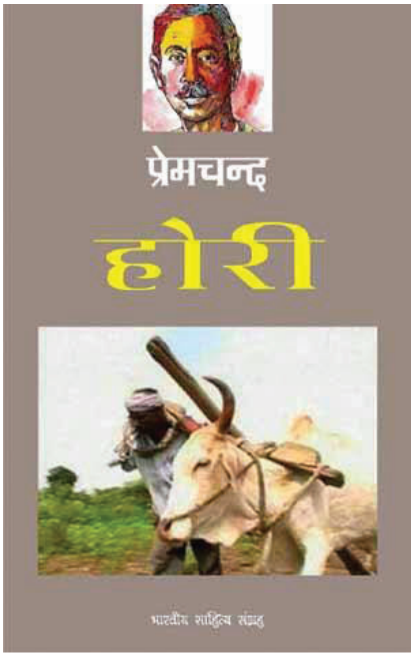

मिस मालती की परपोती, जिसने दिल्ली स्थित आंबेडकर यूनिवर्सिटी से लिबरल आर्ट्स में डिप्लोमा किया है, एक फेमिनिस्ट पॉडकास्ट चलाती है। इनके बाप-दादा कैसे भी रहे हों, मगर कम से कम ये प्रगतिशील हैं और होरी और सिलिया जैसे लोगों से कम से कम बौद्धिक सहानुभूति रखते हैं। इनके डिजिटल पोर्टल के दफ़्तर में दो महिलाएँ काम करने आती हैं, एक का काम है सुबह-शाम झाड़ू-पोंछा करना और दूसरी का काम है दिन में मेहमानों के लिए चाय-पानी बनाना। दोनों दलित हैं, झाड़ू-पोंछा करने वाली को 3 हज़ार महीना और चाय बनाने वाली को 4 हज़ार महीना सैलरी मिलती है। इसके पोर्टल को मेंटेन करने का काम करने वालों में दो इंटर्न्स हैं, जिसमें एक राजस्थान से है और उसका एडमिशन कोटे से आईआईटी मंडी के डेवलपमेंट स्टडीज प्रोग्राम में हो गया था, दूसरा हरियाणा के अटेली से है जिसने जर्नलिज्म में डिग्री ख़त्म की है, दोनों इंटर्न्स को कोई सैलरी नहीं दी जाती है, मगर वो एक प्रतिष्ठित संस्थान में 'अनुभव ही तुम्हारा वेतन है' के सहारे गुज़र-बसर कर रहे हैं।

उसी पोर्टल के लिए भारी विज्ञापनों का इंतज़ाम शहर के पुराने मिल-मालिक सेठ खन्ना का परपोता करता है, जो अब एक बहुराष्ट्रीय एग्री-बिजनेस और क्विक-कॉमर्स कॉन्गलोमरेट का मुख्य कार्यकारी अधिकारी है। सेठ खन्ना का यह परपोता जेनेटिकली मॉडिफाइड बीजों, कॉरपोरेट कीटनाशकों और '10-मिनट ग्रॉसरी सप्लाई' का एकाधिकार रखता है।

राजनीतिक सत्ता, बौद्धिक आवरण और कॉरपोरेट पूंजी का यह ऐसा नया त्रिकोण है, जहाँ राय साहब का सांसद परपोता संसद में किसान-विरोधी नीतियाँ पास करवाता है, प्रोफ़ेसर मेहता का परपोता उन नीतियों को 'आधुनिक सुधार' बताकर अंतरराष्ट्रीय मंचों पर बेचता है, और सेठ खन्ना का कॉरपोरेट परपोता उस आवरण के पीछे पूरे देहात को अपनी जेब में डाले घूमता है।

3

जब होरी जैसे किसान अपनी ज़मीन बचाने या न्यूनतम समर्थन मूल्य का कानूनी अधिकार माँगने के लिए ज़िला मुख्यालय की ओर मार्च करने का प्रयास करते हैं, तो राज्य की पूरी दमनकारी मशीनरी सक्रिय हो जाती है। सड़क पर कीलें ठोक दी जाती हैं, वॉटर कैनन चलाए जाते हैं और इंटरनेट सेवाएँ बंद कर दी जाती हैं। और उसी शाम, पंडित ओंकारनाथ का परपोता, जो अब एक बड़े राष्ट्रीय न्यूज़ चैनल का मुख्य प्राइम-टाइम एंकर और डिजिटल मीडिया नेटवर्क का मालिक है, टी.वी. स्टूडियो की लाल-नीली बत्तियों के बीच चिल्ला रहा होता है। वह अब 'फ़्लैश' जैसा छोटा अख़बार नहीं चलाता, वह शाम आठ बजे स्क्रीन पर मुक्के पटककर, छाती पीटकर देश की जनता को बताता है कि अपनी फसल का वाजिब दाम माँगने वाले ये किसान वास्तव में 'विदेशी साजिश के मोहरे', 'टूलकिट गैंग' और 'देशविरोधी अराजक तत्व' हैं। वह राय साहब के सांसद परपोते की राजनीतिक उपलब्धियों का महिमा मंडन करता है और सेठ खन्ना के परपोते की कंपनियों के विज्ञापनों से अपने चैनल की टीआरपी और राजस्व बढ़ाता है।

राजनीति की इस बिसात पर जाति का पुराना समीकरण भी एक नए और अधिक घातक रूप में ढल गया है। पंडित मातादीन का परपोता, 'पंडित मयंक शर्मा' गाँव में किसी सीधे संघर्ष से बचता है। वह सत्तारूढ़ दल की क्षेत्रीय 'आईटी सेल' का प्रमुख है और यूट्यूब पर 'सनातन क्रान्ति' नाम का एक डिजिटल पोर्टल और चैनल चलाता है, उसके चैनल पर 10 लाख सब्सक्राइबर हैं। जब भी कृषि संकट, बेरोज़गारी या ज़मीन के अधिग्रहण को लेकर किसानों और मज़दूरों में एकजुटता बनने लगती है, मयंक अपने वॉट्सऐप ग्रुप के ज़रिये एक नया सांस्कृतिक या जातिगत विवाद खड़ा कर देता है। वह अत्यंत सूक्ष्मता से जातियों के भीतर उप-जातियों की प्रतिस्पर्धी महत्वाकांक्षाओं को हवा देता है।

मयंक ने सिलिया के परपोते और उसके बेरोज़गार दोस्तों को

100 रुपये रोज़, एक टाइम का समोसा-चाय और 2-जीबी रोज़ाना वाले डेटा पैक के एवज में अपना 'डिजिटल सिपाही' और स्थानीय 'गौ-रक्षक दल' का लठैत बना रखा है। सिलिया के परपोते और उसके दोस्तों की सेकंड-हैंड साइलेंसर-कटी मोटरसाइकिलों के पीछे, नंबर प्लेटों पर और उनके वॉट्सऐप डीपी पर 'हिंदू', 'कट्टर हिंदू' और 'गौ-रक्षक' के जलते हुए अक्षरों वाले बड़े-बड़े स्टीकर चस्पां रहते हैं। मयंक ने उन्हें 'गौ-रक्षा सेल' का 'ज़िला अध्यक्ष' और 'सोशल मीडिया प्रभारी' जैसे कागज़ी पद बाँटकर उनकी कुंठित युवा महत्वाकांक्षा को संतुष्ट कर दिया है।

सिलिया का परपोता, जिसके पूर्वजों के मुँह में कभी धर्म के ठेकेदारों ने छुआछूत और पवित्रता की आड़ में हड्डी ठूँस दी थी, आज मयंक के इशारे पर और अपने इन्हीं 'कट्टर हिंदू' दोस्तों के साथ मिलकर अपनी उसी ऐतिहासिक पीड़ा को भूलकर अपने ही पड़ोसी पिछड़ी जातियों के किसानों के खिलाफ सोशल मीडिया पर ज़हर उगलता है और सड़कों पर हुड़दंग मचाता है। उसे लगता है कि गले में भगवा और हाथ में लाठी लेकर वह सत्ता के करीब पहुँच गया है। बदले में मयंक का सांसद आका चुनाव से ठीक पहले सिलिया के परपोते की बिरादरी के नाम पर एक 'सांस्कृतिक कल्याण बोर्ड' के गठन की घोषणा कर देता है और चौराहे पर उनके एक पूर्वज की आदमकद कांस्य मूर्ति स्थापित करवा देता है।

सिलिया का परपोता उस आदमकद मूर्ति पर ढोल-नगाड़ों के बीच फूल चढ़ाकर और ज़ोर-ज़ोर से जयकारे लगाकर गदगद हो जाता है, जबकि उसकी अपनी ज़मीन, मुफ़्त और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं और पक्के रोज़गार का हक़ उसी भव्य मूर्ति की छाँव में बिना कोई शोर किए चुपचाप बलि चढ़ जाता है।

पुराने ज़माने में राय साहब का कारिंदा नोखेराम गाँव वालों से गाली-गलौज करके बेगार करवाता था। आज नोखेराम का परपोता गाँव का 'पंचायत सचिव' और 'डिजिटल गेटकीपर' है। वह स्थानीय 'प्रधान-पति' और भू-माफिया के साथ मिलकर एक समानांतर सत्ता चलाता है। वह हाथ में बायोमेट्रिक टैबलेट लिए घूमता है। प्रधानमंत्री आवास योजना की किश्त जारी करनी हो, शौचालय का फंड पास कराना हो या बाढ़-सूखे का सरकारी मुआवजा दर्ज करना हो, लोगों को नोखेराम के पास ही जाना होता है। अब 'नज़राना' लेने का दौर ख़त्म हो गया है, हाँ, अब हिसाब-किताब हाथ में नकदी के रूप में हो जाता है। कुछ साल पहले तक वह मनरेगा में काम करने वाले मज़दूरों के बैंक खाते मैनेज करता था। जैसे ही मनरेगा का पैसा मज़दूर के खाते में आता, वह लोगों से कहता कि यह सरकारी पैसा है और तुम्हें एक दिन की दिहाड़ी दी जाएगी, मेरे साथ मेरी मोटर साइकिल पर बैठकर चलो और यह पैसा निकालकर मुझे दे दो। मज़दूर लोग उसकी आज्ञा का किसी आकाशवाणी जैसा पालन करते थे। जो उसकी आज्ञा नहीं मानता, उसका नाम बीपीएल की सूची से रातों-रात हटा दिया जाता है।

अंगूठे की छाप न मिलने के कारण जब होरी हताश होकर जन सेवा केंद्र से बाहर निकलता है, तो उसका सामना गाँव के मोड़ पर चाय की दुकान के पास बैठे भोला अहीर के परपोते से होता है। भोला का परपोता अब कोई दूध की बाल्टियाँ लेकर शहर जाने वाला पारंपरिक ग्वाला नहीं है। कॉरपोरेट डेयरी कंपनियों के ऑटोमेटेड फैट-मापने वाले यंत्रों और दूध संग्रह केंद्रों ने दूध का भाव इतना गिरा दिया कि उसका पारिवारिक धंधा पूरी तरह चौपट हो गया। ऊपर से मवेशी-बाज़ारों पर लगे कड़े कानूनी प्रतिबंधों और गिरोहबंद निगरानी के कारण बूढ़े या अनुत्पादक पशुओं को बेचने के सारे रास्ते बंद हो गए हैं। भोला का परपोता अपनी बची-खुची नस्ली गायों को सड़क पर आवारा छोड़ चुका है और अब एक प्राइवेट सिक्योरिटी कंपनी की नीली वर्दी पहने राय साहब के परपोते वाले नए एक्सप्रेस-वे के टोल-प्लाज़ा पर लाठी लेकर मुस्तैद रहता है।

विडंबना यह है कि जिस 'गोदान' की इच्छा में होरी के पूर्वज जीवन भर घिसते रहे, वही गाय आज होरी के तीन बीघे खेत के विनाश का मुख्य कारण बन गई है। पूस की हाड़ कंपाने वाली रातों में होरी अपनी पकी फसल को जाड़े की मार से बचाने के लिए नहीं जागता है। वह गाँव भर की आवारा गायों और सांडों के झुंड से अपनी खेती बचाने के लिए हाथ में लाठी लिए, कंटीले तारों की बाड़ के पीछे थरथराता रहता है। यदि वह अपनी फसल चर रही किसी गाय को भगाने के लिए डंडा उठा लेता है, तो गाँव के चौराहे पर मयंक शर्मा अपने समर्थकों के साथ उस पर 'धर्म-द्रोही' होने का ठप्पा लगाने की धमकी देने लगता है।

4

भोला की बेटी झुनिया, जो कभी समाज के नैतिक ढोंग को चुनौती देकर गोबर के साथ भाग गई थी, उसकी परपोती, जिसका नाम रबीना है, ने नज़दीकी कसबाई इंटर कॉलेज से बी.ए. की पढ़ाई पूरी की थी। उसकी शादी हो चुकी है और दो बच्चे हैं। उसका पति पड़ोस के जापानी ज़ोन में कोई फ़ैक्टरी है, वहाँ काम करता है और उसको 15 हज़ार महीने की तनख़्वाह मिलती है। रबीना गाँव में सरकारी 'महिला स्वयं सहायता समूह' की सदस्य भी है। कागज़ों और सरकारी विज्ञापनों में यह स्वयं सहायता समूह 'महिला वित्तीय सशक्तिकरण' की मिसाल बनाकर पेश किया जाता है, लेकिन कड़वी वास्तविकता यह है कि रबीना ने अपनी बेटी की बीमारी और एक साहूकार का दो रुपया सैकड़ा का कर्ज़ चुकाने के लिए 4 अलग-अलग माइक्रो-फाइनेंस ऐप और गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों से डिजिटल कर्ज़ ले रखा है। एक ऐप का कर्ज़ चुकाने और उसकी दैनिक किश्त भरने के लिए वह दूसरे ऐप से नए ब्याज पर लोन उठाती है।

पुराने ज़माने में मंगरू साह या दातादीन पचास रुपये के कर्ज़ पर ईख नीलाम करवा लेते थे, लेकिन उनके दरवाज़े पर जाकर पैर पकड़े जा सकते थे, रोया-गिड़गिड़ाया जा सकता था। आज जब रबीना, झुनिया या होरी की किश्त एक दिन के लिए चूक जाती है, तो इन फिनटेक कंपनियों का स्वचालित एल्गोरिदम उनके स्मार्टफोन की पूरी कांटेक्ट-लिस्ट, फोटो गैलरी और लोकेशन को अपने कब्ज़े में ले लेता है। अगले ही मिनट गाँव के हर वॉट्सऐप ग्रुप पर एक ऑटोमेटेड मैसेज चमकने लगता है, 'होरी महतो और उसका परिवार बकायेदार और धोखेबाज़ है'। बेइज़्ज़ती करने के लिए अब किसी

साहूकार के कारिंदे को गाँव नहीं आना पड़ता, सामाजिक बेइज़्ज़ती सीधे डिजिटल नेटवर्क पर एक साथ ब्रॉडकास्ट कर दी जाती है।

होरी का अपना बेटा गोबर गाँव के सामंती दमन से तंग आकर कभी शहर की मिलों में मज़दूरी करने भागा था। आज गोबर का बेटा, जिसे शहर में सब 'गोबी' कहते हैं, नोएडा के एक डार्क स्टोर के बाहर लाल-पीली टी-शर्ट पहने, सिर पर हेलमेट लगाए अपनी सेकेंड-हैंड इलेक्ट्रिक बाइक पर बैठा रहता है। वह सेठ खन्ना के परपोते वाली कंपनी के 'दस-मिनट डिलीवरी ऐप' का 'फ़ास्ट-डिलीवरी पार्टनर' है। आधुनिक पूंजीवाद ने कितनी सफ़ाई से 'मज़दूर' और 'दास' जैसे शब्दों को मिटाकर उसे 'उद्यमी' और 'पार्टनर' बना दिया है! उसके पास न न्यूनतम वेतन की गारंटी है, न स्वास्थ्य बीमा, न दुर्घटना मुआवजा, न काम के निश्चित घंटे, और न ही अपनी बात कहने के लिए कोई यूनियन। उसका मालिक कोई इंसान या सेठ नहीं, बल्कि उसके फोन में बैठा एक 'एल्गोरिदम' है।

यदि वह नौ मिनट पचपन सेकंड में किसी गेटेड सोसाइटी की बहुमंजिला इमारत की पच्चीसवीं मंजिल पर प्रोफ़ेसर मेहता के पोते के लिए आर्गेनिक अवोकाडो और सलाद का पैकेट नहीं पहुँचाता, तो ऐप उसकी रेटिंग गिरा देता है और उसकी दिहाड़ी से जुर्माना काट लेता है। सड़क पर दौड़ते हुए जब कभी उसकी बाइक किसी गड्ढे में गिर जाए या वह किसी अन्य वजह से देर हो जाए, तो उसकी स्क्रीन पर एक लाल अलर्ट चमकता है, 'ऑर्डर में देरी हो रही है, कृपया गति बढ़ाएँ।'

5

मौसम का चक्र भी अब जलवायु परिवर्तन के नए दौर में होरी का सबसे बड़ा दुश्मन बन चुका है। मार्च के शुरुआती हफ़्तों में जब गेहूँ की बालियों में दाना भर रहा होता है, तब अचानक बेमौसम की भीषण गर्मी पड़ती है और दाना सूखकर आधा रह जाता है। जब कटाई का समय आता है, तो मूसलाधार बारिश और ओलावृष्टि बची-खुची उम्मीदों पर पानी फेर देती है। जब होरी अपनी भीगी हुई फसल को लेकर सरकारी मंडी पहुँचता है, तो वहाँ खड़ा सेठ खन्ना की कंपनी का एजेंट अपनी नमी मापने वाली डिजिटल मशीन फसल में घुसेड़ता है। मशीन की स्क्रीन पर रेड लाइट जलती है, 'गुणवत्ता मानक से कम'।

सरकारी खरीद का दरवाज़ा बंद हो जाता है और बाहर खड़ा व्यापारी होरी से कहता है कि सरकारी दर से चालीस प्रतिशत कम पर बेचना हो तो बोलो, वरना इसे यहीं छोड़कर चले जाओ। होरी को खाद का पुराना कर्ज़ चुकाना है, बिजली का 'स्मार्ट-मीटर' रिचार्ज कराना है और पोती की ऑनलाइन कक्षाओं के लिए मोबाइल का डेटा-पैक भरवाना है। वह अपनी मेहनत को उसी कौड़ी के भाव में नीलाम कर देता है।

पूस की रात अपनी चरम बर्फीली ठंड पर पहुँच चुकी है। होरी के कच्चे घर के कोने में उसकी जर्जर काया खाँस रही है। उसके पास जाने के लिए कोई डॉक्टर नहीं है, क्योंकि गाँव के प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र पर हमेशा ताला लटका रहता है। शहर में कुकुरमुत्ते की तरह प्राइवेट हॉस्पिटल हैं जहाँ जाने की हैसियत होरी की नहीं है। सरकार ने उनके आयुष्मान कार्ड बनाकर दिए थे, मगर वे लगभग प्राइवेट हॉस्पिटल वाले स्वीकार नहीं करते हैं। उसकी पत्नी धनिया, अस्सी बरस की झुर्रियों से भरी काया वाली धनिया, होरी के माथे पर फटे कपड़े की पट्टी भिगोकर रखती है।

अचानक होरी के पसीने से चिपचिपे फोन की नीली स्क्रीन जगमगाती है। बैंक का एक ऑटो-जनरेटेड मैसेज आया है,

'प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि की दो हज़ार रुपये की किश्त आपके खाते में जमा की गई है।'

अगले ही क्षण एक दूसरा मैसेज चमकता है,

'फ़िनटेक माइक्रो-फाइनेंस कंपनी द्वारा बकाये ब्याज के मद में दो हज़ार रुपये की स्वतः कटौती। शेष उपलब्ध राशि: शून्य।'

होरी की पथराई आँखें उस नीली स्क्रीन पर लिखे शब्द 'शून्य' पर जाकर टिक जाती हैं। उसने अस्सी सालों तक दिन-रात पसीना बहाया, हल चलाया, मिट्टी फाड़ी, लेकिन उसकी ज़िंदगी का अंतिम लेखा-जोखा हमेशा की तरह केवल 'शून्य' ही निकला। गहन सन्नाटे में होरी का दम उखड़ने लगता है। उसके हाथ-पाँव ठंडे पड़ने लगते हैं। धनिया चीखती है और बदहवास होकर गाँव के किसी झोला छाप डॉक्टर को बुलाने के लिए बाहर भागती है।

होरी के मुँह से हवा का अंतिम घूँट निकलता है। उसकी मृत आँखों की पुतलियों में उसके फोन की स्क्रीन का नीला प्रकाश अब भी परावर्तित हो रहा है, जिस पर प्रोफ़ेसर मेहता के परपोते के डिजिटल पोर्टल से एक नया नोटिफिकेशन बज रहा है, 'भारत में ग्रामीण निर्धनता, चुनावी राजनीति और सबअल्टर्न प्रतिरोध: एक विश्लेषण।'

होरी के पास अंतिम समय में गोदान करने के लिए न कोई गाय है, न ही हाथ में रखने के लिए बीस आने पैसे। उसके काँपते, बेजान अंगूठे पर गाँव की सूखी मिट्टी लगी है, वही मिट्टी जिसकी रेखाओं को राज्य का आधुनिक डिजिटल तंत्र पहचानने से साफ़ इनकार कर चुका है।

सेमरी गाँव की रात सो रही है। राय साहब के सांसद परपोते का फार्महाउस जगमगा रहा है, सेठ खन्ना के ट्रक गाँव का अनाज लादकर बड़े शहरों की ओर बढ़ रहे हैं, प्रोफ़ेसर मेहता का परपोता न्यू यॉर्क की फ़्लाइट पकड़ने के लिए इंदिरा गांधी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे की ओर निकल रहा है, उसका दो दिन बाद विस्कॉन्सिन में एक सेमिनार है जिसका विषय है 'समकालीन भारत में प्रेमचंद की प्रासंगिकता', और होरी महतो की जीवन-लीला राज्य के विशाल डेटाबेस में केवल एक 'निष्क्रिय बायोमेट्रिक आईडी' बनकर विलीन हो जाती है।

•

पढ़ते पढ़ाते

'महाभारत' में शरशय्या पर लेटे भीष्म पितामह से युधिष्ठर और दुर्योधन ने पूछा- पितामह ! राजधर्म क्या है ?

पितामह ने कहा- राजा का कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा को हर प्रकार के भय से मुक्त करे और रखे।

आने वाले कल की कहानी

डेटा नॉट फाउंड

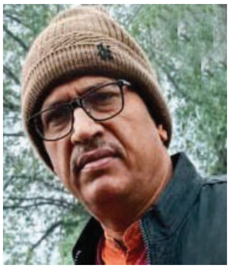

विजयशंकर चतुर्वेदी

जब शहर का आख़िरी पेड़ काटा गया। किसी ने शोर नहीं मचाया। पालतू जानवर तक नहीं बचे थे। उस दिन लोग सरकारी सत्यापन केंद्रों की लंबी लाइनों में खड़े थे। बाहर लगातार ठंडी फुहार पड़ रही थी, और कतार टस से मस नहीं हो रही थीं। हर आदमी अपने हाथ में कोई न कोई फ़ाइल लिए हुए था, जिसमें उसकी पूरी पहचान बंद थी। जन्म प्रमाणपत्र, समग्र आईडी, वोटर आईडी, बैंक पासबुक, राशन कार्ड, पैन कार्ड, बिजली का बिल, रेटिना स्कैन की रसीद, और एक नया सरकारी फ़ॉर्म, जिसके ऊपर मोटे अक्षरों में लिखा था:

"अस्तित्व प्रमाणित करने का प्रपत्र।"

शहर के ठीक बीचोंबीच लगी विशाल स्क्रीन पर मुस्कुराते चेहरे लगातार बदल रहे थे। हर संतुष्ट चेहरे के नीचे एक ही वाक्य बार-बार चमक उठता था:

"जो सत्यापित है, वही सुरक्षित है।"

भीड़ में खड़ा ईशान बार-बार अपनी जेब टटोल रहा था। मोबाइल वहीं था। फिर भी उसे अलग किस्म की बेचैनी हो रही थी। उसने तीसरी बार बटन दबाई। उसका नागरिक विश्वसनीयता स्कोर अब भी हरे रंग में था। 91.15, उसने राहत की साँस ली।

पिछले महीने सिर्फ़ एक डेटा-मिसमैच की वजह से उसका स्कोर तीन अंक गिर गया था। तीन दिन तक उसका मेट्रो एक्सेस बंद रहा था और दफ़्तर में अलग से सत्यापन कराना पड़ा था। वह अपमान अभी तक उसके भीतर फँसा हुआ था।

लाइन धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी थी। ईशान बार-बार अपनी फ़ाइल खोलकर देख लेता। सब कुछ मौजूद था। फिर भी उसे डर लग रहा था कि कहीं सिस्टम अचानक कुछ और न माँग बैठे।

उसने अनायास मोबाइल देखा। कोई नया संदेश नहीं था। लेकिन तभी डिस्प्ले काँपा: "आपकी चिंता का स्तर सामान्य से अधिक है। घबराइए नहीं। आपके क्रेडेंशियल सुरक्षित हैं।" ईशान ने तुरंत मोबाइल बंद कर दिया। उसे पल भर के लिए शर्म महसूस हुई। मानो उसकी घबराहट सबके सामने खुल गई हो।

तभी उसके पीछे खड़े एक सफ़ेद दाढ़ी वाले बूढ़े ने फुसफुसाकर पूछा, "पहली बार आए हो?"

ईशान ने मुड़कर देखा। बूढ़े की आँखें इस कोलाहल में भी असामान्य रूप से शांत थीं। उसने जवाब दिया, "हाँ। क्यों?"

बूढ़े ने कहा, "डरो मत।"

"मैं डर नहीं रहा हूँ।"

बूढ़ा मुस्कुराया, "यहाँ आने वाला हर आदमी शुरुआत में यही कहता है।"

लाइन थोड़ी और आगे बढ़ी। सामने काँच की ऊँची दीवारों वाला एक भव्य भवन था। उसके मुख्य दरवाज़े के ऊपर चमकते अक्षरों में लिखा था: "नागरिक सुविधा एवं पुनर्पहचान केंद्र।"

ईशान को याद आया– मात्र साल भर पहले तक यह जगह इस आधुनिक शहर का सार्वजनिक पुस्तकालय हुआ करती थी। यहीं बैठकर उसने पहली बार प्रेमचंद और फ़ैज़ को पढ़ा था। अब वहाँ कोई किताब नहीं थी; सिर्फ़ मशीनें थीं और मशीनों के खातों में दर्ज बेबस आदमी।

तभी सामने खड़ी एक औरत काउंटर पर अचानक ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी, "मेरे पति मर चुके हैं..."

काउंटर के भीतर से एक सपाट, ठंडी आवाज़ आई, "सिस्टम में मृत्यु सत्यापन अपडेट नहीं है।"

"लेकिन उनका दाह-संस्कार मैंने ख़ुद अपने हाथों से किया है..."

"सिस्टम में यह नागरिक अभी भी पूरी तरह सक्रिय है।"

औरत पत्थर बनी उसे देखती रही। फिर आँसू पोंछते हुए बोली, "तो क्या... वो अभी भी ज़िंदा हैं?"

इस बार काउंटर के भीतर बैठे लड़के ने अपना सिर ऊपर उठाया। उसकी आँखों में गहरी थकान और शून्यता थी। उसने कहा, "मैडम, सिस्टम से बाहर कोई आदमी न पूरी तरह जीवित होता है... और न ही मृत।"

भीड़ में हँसी की पतली लहर उठी, लेकिन वह लोगों के गले में ही अटक कर रह गई। ईशान ने घबराकर अपना मोबाइल देखा। तुरंत एक नोटिफ़िकेशन उभरा: "आप पिछले नौ मिनट से असामान्य तनाव में हैं। क्या आप मानसिक संतुलन सहायता सेवा सक्रिय करना चाहते हैं?" यह देखकर उसकी उँगलियाँ काँप गईं।

पीछे खड़ा बूढ़ा फिर मुस्कुराया, "अब समझे?"

"क्या?" ईशान झुँझला उठा।

"ये डिवाइस सिर्फ़ तुम्हारी बातें नहीं सुनता।" बूढ़ा थोड़ा और करीब आ गया, "ये तुम्हारे भीतर के भय को भी रिकॉर्ड करता है।"

बाहर अब बारिश तेज़ हो गई थी। सड़क पर लगे काले डोम कैमरे लगातार गोल-गोल घूम रहे थे। उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानो पूरा शहर अब इंसानी आँखों से नहीं, बल्कि केवल लेंसों से देखता हो। तभी ईशान की जेब में मोबाइल फिर कंपन करने लगा: "आपने पिछले कुछ मिनटों में तीन बार कैमरे की दिशा में देखने से परहेज़ किया। क्या आपको कोई समस्या है?" ईशान ने तुरंत मोबाइल को जेब में गहराई से डाल लिया। उसने रूमाल से चेहरा पोंछते हुए सोचा– वह अकेला नहीं है; शायद कोई मशीन सचमुच हर पल नज़र बनाए हुए है।

जब ईशान अपनी पुरानी इमारत के कमरे तक पहुँचा, तब रात

के ग्यारह बज चुके थे। यह वही पुरानी इमारत थी जहाँ कभी लोग शाम को बालकनियों में खड़े होकर खुलकर हँसते थे। अब सारी बालकनियाँ सील थीं। खिड़कियों के परदे मोटे हो चुके थे। आवाज़ें बेहद धीमी थीं और हँसी तो जैसे इस शहर से ही ग़ायब हो चुकी थी। कमरे में घुसते ही उसने मोबाइल मेज़ पर रख दिया। उसी समय स्क्रीन बिना छुए अपने आप जल उठी: "आप आज सामान्य से कम सामाजिक रहे। क्या आप हमारे संवाद सुधार कार्यक्रम में शामिल होना चाहेंगे?"

ईशान ने चिढ़कर मोबाइल को उल्टा रख दिया। चंद पलों बाद उसमें फिर एक तीव्र कंपन हुआ: "डिवाइस कवरेज बाधित। कृपया डिवाइस को खुला और सीधा रखें।" उसने अपनी ज़िंदगी में पहली बार उस मोबाइल को इस तरह देखा, जैसे वह कोई निर्जीव वस्तु नहीं... बल्कि कोई चालाक और हिंसक जीव हो। तभी उसके दरवाज़े पर दस्तक हुई। तीन बार... फिर दो बार... फिर एक बार। उसका दिल ज़ोर से धड़क उठा।

"कौन है?"

कुछ देर तक बाहर गहरी चुप्पी रही। फिर एक दबी हुई आवाज़ आई, "पहले अपना मोबाइल बंद करो।"

ईशान का दिमाग़ भन्ना गया। उसने मोबाइल को तकिए के नीचे दबाया और धड़कते दिल से दरवाज़ा खोला। बाहर वही सफ़ेद दाढ़ी वाला बूढ़ा खड़ा था। वह बिना पूछे सीधे भीतर आ गया। कमरे में घुसते ही उसने चारों तरफ़ अपनी खोजी नज़र दौड़ाई– दीवार, पंखा, और वॉशबेसिन के ऊपर लगा आईना। फिर वह बहुत धीमे स्वर में बोला, "इस आईने को तुरंत ढँक दो।"

"क्यों? क्या हुआ?"

"सरकार की नई स्कीम आई है।"

"कौन-सी स्कीम?"

"रिफ़्लेक्टिव मॉनिटरिंग।"

ईशान उसकी बात पर अचानक हँस पड़ा, "आप मज़ाक़ कर रहे हैं ना?"

बूढ़े ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने अपनी जेब से एक काला कपड़ा निकाला और ख़ुद आगे बढ़कर आईने पर डाल दिया। कमरा अचानक और छोटा तथा दमघोंटू लगने लगा।

"आप हैं कौन?" ईशान ने आख़िरकार पूछ ही लिया।

बूढ़ा खिड़की के पास जाकर खड़ा हो गया। नीचे खाली सड़क पर काले कपड़े वाले कुछ लोग एक व्यक्ति को घसीटते हुए ले जा रहे थे। उसने अपना राज खोला, "मैं पहले इसी सिस्टम के भीतर था।"

"मतलब?"

"निगरानी विभाग।"

कमरे में भारीपन आ गया। बूढ़ा धीमे स्वर में फिर बोला, "तुम्हें पता है अब इस देश में सबसे ख़तरनाक आदमी कौन है?"

ईशान चुप रहा।

"वही... जो अकेले बैठकर सोचता है।"

तभी तकिए के नीचे रखा मोबाइल अचानक तेज़ रोशनी के साथ चमका: "चेतावनी! कमरे में असामान्य वार्तालाप पैटर्न दर्ज किया गया है।" दोनों आदमी काठ की तरह स्थिर हो गए। मोबाइल की एआई आवाज़ फिर गूँजी: "अज्ञात उपस्थिति। कृपया आगंतुक का बायोमेट्रिक सत्यापन करें।"

बूढ़े की आँखों में पहली बार असुरक्षा दिखाई दी। उसने जासूसों के अंदाज़ में कहा, "अब यह सिर्फ़ सुनता नहीं है ईशान, कार्रवाई के लिए सही मौके का इंतज़ार भी करता है।"

और ठीक उसी क्षण, सड़क पर एक सरकारी जीप रुकी। पलक झपकते ही सीढ़ियों पर भारी पदचाप सुनाई देने लगी– ठक... ठक... ठक...। बूढ़े ने बिना वक्त गँवाए कमरे का मुख्य स्विच बंद कर दिया। मगर उस अँधेरे में भी तकिए के नीचे दबा मोबाइल जुगनू की तरह चमकता रहा। कदम अब तीसरी मंज़िल तक आ चुके थे।

बाहर से एक सपाट, रोबोटिक आवाज़ आई, "नागरिक ईशान। आपके पंजीकृत डिवाइस ने असामान्य मौन दर्ज किया है। कृपया तुरंत दरवाज़ा खोलें। यह कार्रवाई आपकी सुविधा और सुरक्षा के लिए है।"

तकिए के नीचे से मोबाइल बोलने लगा: "सहयोग करना हर नागरिक का प्राथमिक कर्तव्य है।" ईशान के हाथ-पैर काँपने लगे। तभी दरवाज़े पर एक हल्की इलेक्ट्रॉनिक बीप हुई और उसका स्मार्ट लॉक अपने आप खुल गया। उसकी रीढ़ में बर्फ़ उतर गई।

काले कपड़ों में तीन आदमी कमरे के भीतर दाखिल हुए। उनके चेहरे इतने साधारण और भावहीन थे कि उन्हें दोबारा याद नहीं रखा जा सकता था। उनमें से एक ने आगे बढ़कर ईशान का मोबाइल ढूँढ निकाला। दूसरे ने कमरे को स्कैन करना शुरू किया। तीसरा आईने के सामने जाकर रुका; उसने वह काला कपड़ा हटाया और अपने मोटे होठ हिलाए, "हूँ... पुराना मॉडल।" तभी उसकी तीखी नज़र कोने में दुबके बूढ़े पर पड़ी, "यह नागरिक कौन है?"

ईशान ने मुँह से एक बोल भी नहीं फूटा।

"आगंतुक इस परिसर के लिए सत्यापित नहीं है।"

अब ईशान ने झूठ बोलने का प्रयास किया, "ये... ये मेरे दूर के रिश्तेदार हैं।"

अधिकारी के हाथ में आ चुका मोबाइल उसी क्षण लाल होकर चमक उठा: "संभावित असत्य दर्ज।" कमरे में मुर्दनगी छा गई। बूढ़ा अचानक हँसा– एक धीमी, टूटी हुई हँसी। तीनों अधिकारी झटके से उसकी तरफ़ मुड़े। बूढ़े ने उनकी आँखों में आँखें डालकर कहा, "पहले सरकारें जीते-जागते आदमी से घबराती थीं... और आज आदमी अपने ही डेटा से काँपता है।"

एक अधिकारी ने तुरंत अपनी जेब से स्कैनर निकाला। उसकी तेज़ रोशनी बूढ़े के चेहरे पर पड़ी। स्कैनर अजीब तरह से बीप-बीप करने लगा: "रिकॉर्ड अनुपलब्ध। डेटा नॉट फाउंड।" तीनों अधिकारी बेहद असहज हो गए। दूसरे अधिकारी ने किसी मशीन की तरह बोलना शुरू किया–

"आपका नागरिक क्रमांक? आप आख़िरी बार ऑनलाइन कब थे?"

"पिछले बायोमेट्रिक सिंक का टाइमस्टैम्प बताइए।"

"क्या आपकी न्यूरल-प्रोफ़ाइल अभी भी केंद्रीय सर्वर से लिंक्ड

है?”

“आपकी अंतिम लोकेशन-पिंग किस ज़ोन से दर्ज़ हुई थी?”

“क्या आपके पास वैध व्यवहार-स्कोर प्रमाणन है?”

बूढ़े ने धीरे-धीरे अपना सिर उठाया। उसकी धँसी हुई आँखों में इस वक़्त एक अजीब, लगभग जंगली चमक तैर रही थी। शायद उसने काफी पहले डरना छोड़ दिया था। उसने स्थिर आवाज़ में जवाब दिया,

“जिस दिन मैंने इस कृत्रिम सिस्टम को छोड़कर अपनी आँखों से असली दुनिया को देखना शुरू किया था... उसी दिन से मैं तुम्हारे रिकॉर्डों से ग़ायब हूँ।”

अधिकारियों को क्या मालूम था कि जिस आदमी को वे “डेटा नॉट फाउंड” की शक्ल में देख रहे थे, वह इस डेटा-साम्राज्य का शिल्पकार रह चुका था। लोग उसे “आर्किटेक्ट” कहा करते थे। सबसे पहले उसीने प्रस्ताव रखा था कि मनुष्य की अस्थिर, भावुक और त्रुटिपूर्ण प्रवृत्तियों को डेटा के अनुशासन से नियंत्रित किया जा सकता है।

शुरुआत में सब कुछ अद्‌भुत लगा था। अपराध घट गए। दुर्घटनाएँ कम हो गईं। मशीनें लोगों को समय पर दवा लेने, सही भोजन करने, सही साथी चुनने और सही शब्द बोलने तक की सलाह देने लगीं। शहर पहले से अधिक शांत, अधिक व्यवस्थित और अधिक “सभ्य” दिखाई देने लगा।

लेकिन धीरे-धीरे आर्किटेक्ट ने पाया कि लोगों ने स्वयं निर्णय लेना बंद कर दिया था। बच्चे रास्ते याद नहीं रखते थे। रिश्ते एल्गोरिद्म आधारित संगतता स्कोर में बदल गए। माएँ बच्चों के रोने का अर्थ समझने के लिए स्क्रीन देखने लगी थीं। और आदमी अपने भीतर उठते दुःख को भी ऐप से सत्यापित करने लगा था।

फिर एक दिन उसकी पत्नी को हृदयाघात हुआ। मदद के लिए वह आपातकालीन नेटवर्क सक्रिय करता रहा, लेकिन केंद्रीय सिस्टम ने बार-बार एक ही जवाब दिया, “प्राथमिकता का निम्न स्तर।” उसे समझ में आ चुका था कि सिस्टम अब वैसा नहीं रह गया, जैसा उसने बनाया था। कुछ “अधिक उत्पादक” नागरिकों को सेवाओं में वरीयता दी जा रही थी। अन्य विकल्प हटा दिए गए थे।

आख़िरकार उसकी आँखों के सामने ही पत्नी ने दम तोड़ा। आर्किटेक्ट पहली बार अपने ही बनाए सिस्टम से डर गया। उसे लगा जैसे उसने कोई अदृश्य कारागार बना दिया है, एक ऐसा चक्रव्यूह जिसमें पूरा समाज फँस चुका है... और अंततः वह स्वयं भी उसी में क़ैद हो गया था।

कई महीनों तक उसने भीतर रहकर सिस्टम बदलने की कोशिश की। लेकिन हर संशोधन, हर मानवीय हस्तक्षेप, हर नैतिक आपत्ति को एल्गोरिद्म “भावनात्मक त्रुटि” कहकर अस्वीकार कर देता।

तब एक रात उसने अपना नागरिक क्रमांक मिटा दिया। अपनी न्यूरल-आईडी तोड़ दी। और शहर के डिजिटल नक़्शे से हमेशा के लिए ग़ायब हो गया।

एक अधिकारी ने दूसरे के कान में कहा, “यह एक डेंजरस ऑफ़लाइन एलिमेंट है...।” तीसरे ने तुरंत अपने कान के पास लगे कम्युनिकेटर को सक्रिय किया, “श्रीमान... हमें एक ‘अनलिंक्ड’ व्यक्ति मिला है...”

करीब आधे मिनट तक हेडक्वार्टर के निर्देश आते रहे, फिर उस अधिकारी का चेहरा और सपाट हो गया। उसने अपने साथियों से कहा, “कंट्रोल का आदेश है कि इन्हें हर हाल में हेडक्वार्टर पहुँचाना है। जीवित।”

ईशान इस पूरे रहस्य को समझ नहीं पा रहा था। बूढ़ा उसकी उलझन समझ कर ख़ुद ही बताने लगा, “इंसानों को क़ैद करने के लिए यह डिजिटल पिंजरा बनाया गया है।”

और ठीक उसी क्षण समूचे शहर की बिजली गुल हो गई। घने अँधेरे ने सबको घेर लिया। फिर दूर कहीं से एक दर्दनाक चीख़ सुनाई दी... फिर दूसरी... और देखते ही देखते शहर अजीब कोलाहल और आवाज़ों से भरने लगा। लोग इस अँधेरे के आदी नहीं रह गए थे, इसलिए वे बदहवास भाग रहे थे, चिल्ला रहे थे और अपने बंद पड़े मोबाइलों को झिंझोड़ रहे थे। चारों तरफ़ बस यही शोर था कि नेटवर्क कहाँ गया, और बिना निर्देशों के हम कैसे जीवित रहेंगे।

तीनों अधिकारी अब हेडक्वार्टर की रेंज से बाहर थे। किसी निर्देश की अनुपस्थिति में वे जल्दी-जल्दी बाहर निकल गए।

सड़क के बीचोंबीच खड़ा एक भ्रमित आदमी अपने मोबाइल को बार-बार चेहरे के सामने ला रहा था, मानो स्क्रीन फिर से जल उठेगी और उसे बताएगी कि किस गली में मुड़ना है। जब कुछ नहीं हुआ, तो वह काँपती आवाज़ में आसपास के लोगों से पूछने लगा, “मेरा मकान क्रमाँक क्या है?”

एक औरत फुटपाथ पर बैठ गई थी। उसकी गोद में रोता हुआ बच्चा था, लेकिन वह उसे चुप कराने के बजाय लगातार अपनी कलाई पर बँधे हेल्थ-बैंड को थपथपा रही थी। उसे समझ नहीं आ रहा था कि बच्चे को भूख लगी है, डर लगा है या बस उसे माँ की बाँहों की ज़रूरत है।

उधर लगभग दस साल का एक लड़का बंद दरवाज़े के सामने खड़ा रो रहा था। स्मार्ट-लॉक ने काम करना बंद कर दिया था। वह दरवाज़े को हाथ से धक्का देने की कोशिश तक नहीं कर रहा था। बस वॉइस-कमांड दोहरा रहा था– “ओपन होम। ओपन होम। ओपन होम...”

लेकिन आदिम अँधेरा किसी सर्वर से जुड़ा नहीं था।

बूढ़े ने आगे बढ़कर खिड़की के कपाट पूरी तरह खोल दिए। बाहर सारे कैमरे मृत पड़े थे। स्क्रीनें बुझ चुकी थीं। और कई महीनों में पहली बार आसमान के तारे साफ़ दिखाई दे रहे थे। नीचे सड़क पर लोग अँधेरे में भटक रहे थे। कुछ असहाय होकर रो रहे थे, तो कुछ बिल्कुल स्तब्ध खड़े थे; समझ ही नहीं आ रहा था कि स्क्रीन के निर्देशों के बिना उन्हें अपने पैरों का क्या करना चाहिए।

तभी दूर बस्तियों के किसी गहरे कोने से एक लंबी, फटी हुई और जंगली आवाज़ उठी। हुबहू भेड़ियों जैसी। लेकिन सब जानते थे कि कंक्रीट के इस शहर में कोई भेड़िया नहीं था।

ईशान का पूरा शरीर काँप उठा, "ये... ये आवाज़ कैसी है?"

बूढ़ा अँधेरे में मुस्कुराया, "बहुत समय से लोगों ने अपनी असली आवाज़ सुनी ही नहीं थी।"

उसी समय नीचे की सीढ़ियों पर फिर से भारी कदमों की धमक गूँजी। इस बार वे और तेज़ थे। बैकअप पावर सिस्टम को समय से पहले चालू किया जा चुका था। दूर आसमान में सुरक्षा ड्रोनों की लाल बत्तियाँ फिर से टिमटिमाने लगीं।

बूढ़ा तुरंत ईशान के ठीक सामने आकर खड़ा हो गया। उसने उसके कंधे झिंझोड़े, "अब मेरी बात ध्यान से सुनो। अगर तुम इस पिंजरे से सचमुच हमेशा के लिए बचना चाहते हो... तो तुम्हें इस व्यवस्था से पूरी तरह 'ऑफ़लाइन' होना पड़ेगा।"

ईशान ने घबराकर पूछा, "अगर मैं मोबाइल से अपना सारा डेटा ही डिलीट कर दूँ तो?"

बूढ़ा हँसा, जैसे उसने संसार के सबसे बड़े भ्रम को अपने सामने खड़ा देख लिया हो। "तुम समझते हो कि तुम्हारा जीवन इस छोटे-से उपकरण में कैद है? नहीं। यह तो सिर्फ़ दरवाज़ा है। तुम्हारी परछाई तक उन विशाल सर्वरों की अंधेरी सुरंगों में हमेशा के लिए दर्ज़ हो चुकी है।"

ईशान के शरीर में सिहरन दौड़ गई, "मतलब... वे मेरे बारे में सब कुछ जानते हैं?"

बूढ़े की आवाज़ पत्थर की तरह ठंडी थी, "तुम्हारी हर साँस, हर कदम, हर संबंध का हिसाब उनके पास है। तुम्हें जेल में डालने के लिए उन्हें हथकड़ी की ज़रूरत नहीं। तुम्हारी इच्छाएँ, तुम्हारे डर, तुम्हारी पसंद, सबकी नक्शानवीसी हो चुकी है।"

ईशान ने अनायास अपनी मुट्ठियाँ भींच लीं।

बूढ़ा आगे बोला, "वे तुम्हें गोली मारकर ख़त्म नहीं करेंगे। तुम्हारी पहचान मिटा देंगे। और एक दिन तुम इस दुनिया के बीच खड़े होकर भी साबित नहीं कर पाओगे कि तुम मौजूद हो।"

ईशान बूढ़े की ओर मुँह बाए देखता रहा।

"अगर सचमुच आज़ाद होना है," बूढ़े ने धीमे लेकिन दृढ़ स्वर में कहा, "तो उस भय से डिस्कनेक्ट होना होगा, जो उन्होंने तुम्हारे भीतर इंस्टॉल कर दिया है।"

ईशान को पहली बार समझ आया कि क़ैद हमेशा सलाखों की नहीं होती। उसके चारों ओर खड़ी सबसे मज़बूत दीवारें उसकी अपनी आदतों और आशंकाओं से बनी थीं।

बूढ़ा उसके कान के पास झुका और फुसफुसाया, "मोबाइल फेंक दो। अपनी इस थोपी हुई पहचान से बाहर निकलो। और सबसे ज़रूरी... अपने भीतर के भय को जड़ से उखाड़ फेंको।"

ईशान की नज़र मेज़ पर छोड़े गए अपने मोबाइल पर गई। उसके भीतर मशीनी आवाज़ जीवित हो उठी थी: "चेतावनी! डिवाइस निष्क्रिय करना एक गंभीर राष्ट्र-विरोधी गतिविधि।"

ईशान उस चमकते यंत्र को देखता रहा। उसकी हथेली पसीने से तरबतर चुकी थी। तभी स्क्रीन ने अचानक रंग बदला। संदेश उभरा— "आपका नागरिक विश्वसनीयता स्कोर अस्थायी समीक्षा में भेजा गया है।" हरे रंग का 91.15 अब पीले में बदल चुका था– 63.04।

फिर एक के बाद एक संदेश चमकने लगे:

"आपका बैंक खाता निगरानी श्रेणी में रखा गया है।"

"आप फिलहाल अपनी कुल जमा राशि का केवल 10% ही निकाल सकते हैं।"

ईशान ने घबराकर अपना बैंक ऐप खोला। स्क्रीन पर उपलब्ध राशि अब भी वही थी...लेकिन उसके नीचे लाल अक्षरों में लिखा था, "निकासी सीमा लागू।"

उसे याद था कि अगले हफ़्ते घर का किराया कटना था, और स्वास्थ्य बीमा की किस्त भी।

तभी कुछ और संदेश चमके: "यात्रा-अनुमति अस्थायी रूप से निलंबित।"

"सामाजिक संपर्क-मानचित्र पुनर्मूल्यांकन के अधीन।"

ईशान ने तुरंत एक परिचित नाम पर क्लिक किया। लाल स्क्रीन बोली– "अनधिकृत संपर्क।"

"चेतावनी: व्यवहार-पैटर्न में विचलन दर्ज़।"

"स्कोर 32.57, आवासीय अधिकार सीमित।"

ईशान ने अविश्वास से बूढ़े की तरफ़ देखा, "ये... ये लोग ऐसा कैसे कर सकते हैं?"

बूढ़ा बोला, "वे अब स्कोर में क़ैद करते हैं।"

ईशान के पैरों तले ज़मीन खिसक गई। उसे अपने पिता की आख़िरी रात याद आई। तब वह बहुत छोटा था। दो अधिकारी ठीक इसी तरह घर आए थे। उनके चेहरों पर कोई क्रोध नहीं, कोई भाव नहीं, बस ठंडी प्रशासनिक तत्परता थी।

"बिजली के स्मार्ट मीटर में असामान्य व्यवहार दर्ज़ हुआ है। आपकी गतिविधियाँ देर रात तक चलती हैं।"

"कृपया सत्यापन हेतु हमारे साथ चलिए।"

उसके पिता बार-बार सिर्फ़ एक बात कह रहे थे। "मैंने कुछ ग़लत नहीं किया...मैं सिर्फ़ पढ़ता रहता हूँ।"

लेकिन अधिकारियों की आँखों में वह आदमी नहीं, सिर्फ़ एक त्रुटिपूर्ण रिकॉर्ड था।

जब वे उन्हें ले जा रहे थे, तब उसके पिता ने एक क्षण के लिए पीछे मुड़कर ईशान को देखा था। वह न डर था, न ग़ुस्सा। बस एक असहाय कोशिश, जैसे कोई अपने बेटे का चेहरा आख़िरी बार याद कर लेना चाहता हो।

उसके बाद वह कभी लौटकर नहीं आए। अगले दिन घर की केंद्रीय स्क्रीन पर सिर्फ़ एक पंक्ति चमकी थी, "सुरक्षा असंगति के कारण नागरिक प्रोफ़ाइल निष्कासित कर दी गई है।"

ईशान को वह पुनर्पहचान केंद्र भी याद आया, जहाँ कभी पुस्तकालय हुआ करता था... और वह लाचार औरत जिसका मृत पति सिस्टम के खातों में ज़बरदस्ती जीवित रखा गया था।

ईशान ने अपने पिता को सिस्टम में ढूँढ़ने की आख़िरी कोशिश की। काँपते हाथों से उसने मोबाइल में उनका नागरिक क्रमांक, पुरानी पहचान-सूचनाएँ और बायोमेट्रिक कोड डाले। स्क्रीन कुछ पर कुछ देर तक प्रोसेसिंग का पहिया घूमता रहा। फिर एक नामुराद पंक्ति उभरी। "डेटा नॉट फाउंड।"

ईशान को पहली बार महसूस हुआ कि इस शहर में आदमी का मरना भी इतना भयावह नहीं था...

बाहर ड्रोनों की गड़गड़ाहट अब और पास आने लगी थी। बूढ़े ने कड़े स्वर में कहा, "वक़्त नहीं है...!"

ईशान ने आगे बढ़कर मोबाइल को अपने हाथ में उठा लिया। उसकी हथेली बुरी तरह काँप रही थी। एक संदेश पढ़ने में आया— "आपकी स्वतंत्रता हमारे पास सुरक्षित है।"

उसने बिना एक पल गँवाए खिड़की खोल दी। नीचे अधिकांश शहर अब भी अँधेरे में डूबा था। उसकी उँगलियाँ मोबाइल पर जमी रहीं। जैसे वह कोई डिवाइस नहीं... अपनी पूरी दर्ज़ की गई ज़िंदगी फेंकने जा रहा हो। कुछ ही क्षण बाद नीचे से एक 'टप' की आवाज़ लौटी। फिर सन्नाटा।

उसी सन्नाटे में दूर कहीं से एक लंबी, फटी हुई हुंकार उठी। फिर दूसरी। फिर तीसरी।

अँधेरे में नीचे कहीं उसका मोबाइल पड़ा था। उसे नहीं मालूम था कि वह सचमुच बंद हो चुका है...

या अब भी चुपचाप सब कुछ रिकॉर्ड कर रहा है।

•

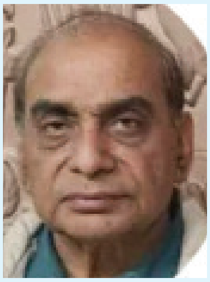

जेन जी के लिए कविताएँ

शैलेन्द्र चौहान

1. ऐतराज

उन्हें
जेन जी की गालियाँ पसंद नहीं।

उन्हें पसंद हैं
सदियों से चली आती
सभ्य मुस्कानें
जिनके पीछे
छिपी रहती हैं
जातियाँ, ऊँच-नीच, स्त्री के लिए नियम
पुरुष के लिए छूट
और धर्म के नाम पर सजा हुआ पाखंड
दोहरे मानदंड।

वे कहते हैं
"बेटा, भाषा ठीक रखो।"
कोई उनसे पूछे
भाषा पहले बिगड़ी या समाज?
किसने सिखाया
कि अपमान को संस्कार कहा जाए
और विरोध को असभ्यता?

युवाओं की ज़ुबान पर उन्हें ऐतराज़ है
पर अपनी सदियों पुरानी गालियों पर नहीं
जो कभी जाति बनकर निकलीं
कभी लिंग बनकर
कभी धर्म बनकर
कभी सत्ता बनकर।

वे शब्दों को कटघरे में
खड़ा करते हैं
और इतिहास चुपचाप
उनकी ओर देखकर मुसकुरा देता है।

क्योंकि हर पीढ़ी जानती है
गाली हमेशा मुँह से नहीं निकलती
कभी-कभी पूरा समाज ही
एक गाली की तरह जीया जाता है।

2. लड़ाई

लड़ती हुई लड़कियाँ
सिर्फ़ सड़कों पर नहीं होतीं
वे घरों की चौखटों पर भी
हर रोज़ लड़ती हैं।

वे लड़ती हैं
अपनी आवाज़ बचाने के लिए
अपने सपनों के रंग
फीके पड़ जाने से पहले।

वे लड़ती हैं
किताबों के पन्नों में जगह के लिए
विद्यालयों, विश्वविद्यालयों
कारखानों और दफ़्तरों में
बराबरी की एक कुर्सी के लिए।

वे लड़ती हैं
उन नज़रों से
जो उन्हें इंसान नहीं
एक वस्तु समझती हैं।

वे लड़ती हैं
अपने शरीर पर
अपने अधिकार के लिए
अपने निर्णयों पर
अपने हस्ताक्षर के लिए।

उनकी लड़ाई
हमेशा नारों में नहीं होती
कभी वह माँ की चुप्पी में होती है
कभी बेटी के इनकार में
कभी एक छात्रा के प्रश्न में
कभी किसी मज़दूर स्त्री की
थकी हुई हथेलियों में।

वे जानती हैं
कि हर जीत के बाद
एक नई लड़ाई इंतज़ार करती है
फिर भी वे रुकती नहीं।

क्योंकि उन्हें मालूम है
यदि वे हार गईं
तो आने वाली पीढ़ियों की
बहुत-सी लड़कियाँ
जन्म लेने से पहले ही
हार जाएँगी।

इसलिए
लड़ती हुई लड़कियाँ
दरअसल
सिर्फ़ अपना भविष्य नहीं बचातीं
वे बचाती हैं
समाज का विवेक
लोकतंत्र की साँस
और मनुष्यता की सबसे सुंदर संभावना।

पेड़ की बात

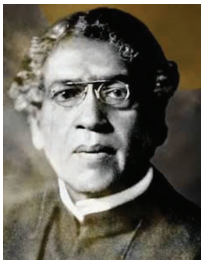

भारत के महान वैज्ञानिक डॉ. जगदीश चंद्र बसु

बहुत दिनों तक मिट्टी के नीचे बीज पड़े रहे। इसी तरह महीना-दर-महीना बीतता गया। सर्दियों के बाद वसंत आया। उसके बाद वर्षा की शुरूआत में दो-एक दिन पानी बरसा। अब और छिपे रहने की आवश्यकता नहीं थी! मानों बाहर से कोई शिशु को पुकार रहा हो, 'और सोए मत रहो, ऊपर उठ जाओ, सूरज की रोशनी देखो।' आहिस्ता आहिस्ता बीज का ढक्कन दरक गया, दो सुकोमल पत्तियों के बीच अंकुर बाहर निकला। अंकुर का एक अंश नीचे माटी में मज़बूती से गड़ गया और दूसरा अंश माटी भेदकर ऊपर की ओर उठा। क्या तुमने अंकुर को उठते देखा है? जैसे कोई शिशु अपना नन्हा-सा सिर उठाकर आश्चर्य से नई दुनिया को देख रहा है!

वृक्ष का अंकुर निकलने पर जो अंश माटी के भीतर प्रवेश करता है, उसका नाम जड़ है और जो अंश ऊपर की ओर बढ़ता है, उसे तना कहते हैं। सभी पेड़-पौधों में 'जड़ व तना' ये दो भाग मिलेंगे। यह एक आश्चर्य की बात है कि पेड़-पौधों को जिस तरह ही रखो, जड़ नीचे की ओर जाएगी व तना ऊपर की ओर उठेगा। एक गमले में पौधा था। परीक्षण करने के लिए कुछ दिन गमले को औंधा लटकाए रखा।

पौधे का सिर नीचे की तरफ़ लटका रहा और जड़ ऊपर की ओर रही। दो-एक दिन बाद क्या देखता हूँ कि जैसे पौधे को भी सब भेद मालूम हो गया हो। उसकी सब पत्तियाँ और डालियाँ टेढ़ी होकर ऊपर की तरफ़ उठ आईं तथा जड़ घूमकर नीचे की ओर लटक गई। तुमने कई बार सर्दियों में मूली काटकर बोई होगी। देखा होगा, पहले पत्ते व फूल नीचे की ओर रहे। कुछ दिन बाद देखोगे कि पत्ते और फूल ऊपर की ओर उठ आए हैं।

हम जिस तरह भोजन करते हैं, पेड़-पौधे भी उसी तरह भोजन करते हैं। हमारे दाँत हैं, कठोर चीज़ खा सकते हैं। नन्हें बच्चों के दाँत नहीं होते वे केवल दूध पी सकते हैं। पेड़-पौधों के भी दाँत नहीं होते, इसलिए वे केवल तरल द्रव्य या वायु से भोजन ग्रहण करते हैं। पेड़-पौधे जड़ के द्वारा माटी से रस-पान करते हैं। चीनी में पानी डालने पर चीनी गल जाती है। माटी में पानी डालने पर उसके भीतर बहुत-से द्रव्य गल जाते हैं। पेड़-पौधे वे ही तमाम द्रव्य सोखते हैं। जड़ों को पानी न मिलने पर पेड़ का भोजन बंद हो जाता है, पेड़ मर जाता है।

सूक्ष्मदर्शी से अत्यंत सूक्ष्म पदार्थ स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। पेड़ की डाल अथवा जड़ का इस यंत्र द्वारा परीक्षण करके देखा जा सकता है कि पेड़ में हज़ारों-हज़ार नल हैं। इन्हीं सब नलों के द्वारा माटी से पेड़ के शरीर में रस का संचार होता है।

इसके अलावा वृक्ष के पत्ते हवा से आहार ग्रहण करते हैं। पत्तों में अनगिनत छोटे-छोटे मुँह होते हैं। सूक्ष्मदर्शी के ज़रिए अनगिनत मुँह पर अनगिनत होंठ देखे जा सकते हैं। जब आहार करने की ज़रूरत न हो तब दोनों होंठ बंद हो जाते हैं। जब हम श्वास-प्रश्वास ग्रहण करते हैं तब प्रश्वास के साथ एक प्रकार की विषाक्त वायु बाहर निकलती है, उसे 'अंगारक' वायु कहते हैं। अगर यह ज़हरीली हवा पृथ्वी पर इकट्ठी होती रहे तो तमाम जीव-जंतु कुछ ही दिनों में उसका सेवन करके नष्ट हो सकते हैं। ज़रा विधाता की करुणा का चमत्कार तो देखो, जो जीव-जंतुओं के लिए ज़हर है, पेड़-पौधे उसी का सेवन करके उसे पूर्णतया शुद्ध कर देते हैं। पेड़ के पत्तों पर जब सूर्य का प्रकाश पड़ता है, तब पत्ते सूर्य-ऊर्जा के सहारे 'अंगारक' वायु से अंगार निःशेष कर डालते हैं। और यही अंगार वृक्ष के शरीर में प्रवेश करके उसका संवर्द्धन करते हैं। पेड़-पौधे प्रकाश चाहते हैं। प्रकाश न मिलने पर ये बच नहीं सकते। पेड़-पौधों की सर्वाधिक कोशिश यही रहती है कि किसी तरह उन्हें थोड़ा-सा प्रकाश मिल जाए। यदि खिड़की के पास गमले में पौधा रखो, तब देखोगे कि सारी पत्तियाँ व डालियाँ अंधकार से बचकर प्रकाश की ओर बढ़ रही हैं। वन-अरण्य में जाने पर पता लगेगा कि तमाम पेड़-पौधे इस होड़ में सचेष्ट हैं कि कौन जल्दी से सिर उठाकर पहले प्रकाश को झपट ले। बेल-लताएँ छाया में पड़ी रहने से, प्रकाश के अभाव में मर जाएँगी। इसलिए वे पेड़ों से लिपटती हुई, निरंतर ऊपर की ओर अग्रसर होती रहती हैं।

अब तो समझ गए होंगे कि प्रकाश ही जीवन का मूलमंत्र है। सूर्य-किरण का स्पर्श पाकर ही पेड़ पल्लवित होता है। पेड़-पौधों के रेशे-रेशे में सूरज की किरणें आबद्ध हैं। ईंधन को जलाने पर जो प्रकाश व ताप बाहर प्रकट होता है, वह सूर्य की ही ऊर्जा है। पेड़-पौधे व समस्त हरियाली प्रकाश हथियाने के जाल हैं। पशु-डाँगर, पेड़-पौधे या हरियाली खाकर अपने प्राणों का निर्वाह करते हैं। पेड़-पौधों में जो सूर्य का प्रकाश समाहित है वह इसी तरह जंतुओं के शरीर में प्रवेश करता है। अनाज व सब्ज़ी न खाने पर हम भी बच नहीं सकते हैं। सोचकर देखा जाए तो हम भी प्रकाश की ख़ुराक पाने पर ही जीवित हैं।

कोई-कोई पेड़ एक वर्ष के बाद ही मर जाते हैं। सब पेड़ मरने से पहले संतान छोड़ जाने के लिए व्यग्र हैं। बीज ही उनकी संतान है। बीज की सुरक्षा व सार-सँभाल के लिए पेड़ फूल की पंखुड़ियों से

घिरा एक छोटा-सा घर तैयार करता है। फूलों से आच्छादित होने पर पेड़ कितना सुंदर दिखलाई पड़ता है। जैसे फूल-फूल के बहाने वह स्वयं हँस रहा हो। फूल की तरह सुंदर चीज़ और क्या है? जरा सोचो तो, पेड़-पौधे तो मटमैली माटी से आहार व विषाक्त वायु से अंगारक ग्रहण करते हैं, फिर इस अपरूप उपादान से किस तरह ऐसे सुंदर फूल खिलते हैं। तुमने कथा तो सुनी होगी—स्पर्शमणि की अर्थात पारस पत्थर की, जिसके स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है। मेरे विचार से माँ की ममता ही वह मणि है। संतान पर स्नेह न्योछावर होते ही फूल खिलखिला उठते हैं। ममता का स्पर्श पाते ही मानो माटी व अंगार के फूल बन जाते हैं।

पेड़ों पर मुस्कुराते फूल देखकर हमें कितनी ख़ुशी होती है! शायद पेड़ भी कम प्रफुल्लित नहीं होते! ख़ुशी के मौक़े पर हम अपने परिजनों को निमंत्रित करते हैं। उसी प्रकार फूलों की बहार छाने पर पेड़-पौधे भी अपने बंधु-बांधवों को बुलाते हैं। स्नेहसिक्त वाणी में पुकार सकते हैं, "कहाँ हो मेरे बंधु, मेरे बांधव, आज मेरे घर आओ। यदि रास्ता भटक जाओ, कहीं घर पहचान नहीं सको, इसलिए रंग-बिरंगे फूलों के निशान लगा रखे हैं। ये रंगीन पंखुड़ियाँ दूर से देख सकोगे।" मधुमक्खी व तितली के साथ वृक्ष की चिरकाल से घनिष्ठता है। वे दल-बल सहित फूल देखने आती हैं। कुछ पतंगे दिन के समय पक्षियों के डर से बाहर नहीं निकल सकते। पक्षी उन्हें देखते ही खा जाते हैं, इसलिए रात का अँधेरा घिरने तक वे छिपे रहते हैं। शाम होते ही उन्हें बुलाने की ख़ातिर फूल चारों तरफ़ सुगंध-ही-सुगंध फैला देते हैं।

वृक्ष अपने फूलों में शहद का संचय करके रखते हैं। मधु-मक्खी व तितली बड़े चाव से मधुपान करती हैं। मधु-मक्खी के आगमन से वृक्ष का भी उपकार होता है। तुम लोगों ने फूल में पराग-कण देखे होंगे। मधुमक्खियाँ एक फूल के पराग-कण दूसरे फूल पर ले जाती हैं। पराग-कण के बिना बीज पक नहीं सकता।

इस प्रकार फूल में बीज फलता है। अपने शरीर का रस पिलाकर वृक्ष बीजों का पोषण करता है। अब अपनी ज़िंदगी के लिए उसे मोह-माया का लोभ नहीं है। तिल-तिल कर संतान की ख़ातिर सब-कुछ लुटा देता है। जो शरीर कुछ दिन पहले हरा-भरा था, अब वह बिल्कुल सूख गया है। अपने ही शरीर का भार उठाने की शक्ति क्षीण हो चली है। पहले हवा बयार करती हुई आगे बढ़ जाती थी। पत्ते हवा के संग क्रीड़ा करते थे।

छोटी-छोटी डालियाँ ताल-ताल पर नाच उठती थीं। अब सूखा पेड़ हवा का आघात सहन नहीं कर सकता। हवा का बस एक थपेड़ा लगते ही वह थर-थर काँपने लगता है। एक-एक करके सभी डालियाँ टूट पड़ती हैं। अंत में एक दिन अकस्मात पेड़ जड़ सहित भूमि पर गिर पड़ता है।

इस तरह संतान के लिए अपना जीवन न्योछावर करके वृक्ष समाप्त हो जाता है।

•

ललित निबंध

धान का मौसम : मेहमान का मौसम

कृष्णप्रताप सिंह

सावन हमारे बीच से जा चुका है और भादों ने दस्तक दे दी है। लेकिन महाकवि कालिदास के महाकाव्य 'रघुवंशम' के मंगलाचरण के पहले श्लोक के शब्दों में कहें तो दोनों इस तरह 'वागर्थाविव संपृक्तौ' (शब्द और अर्थ की तरह घुले-मिले) हैं कि उन्हें अलग करके देखना मुमकिन ही नहीं।

गीतकार आनंद बख़्शी के लिखे और लता मंगेशकर के गाए 'महबूबा' फिल्म के गीत 'मेरे नैना सावन-भादों, फिर भी मेरा मन प्यासा!' में ही नहीं, अनेक दूसरे गीतों में भी मन की प्यास से विकल नायिकाएं नीर भरे नैनों से तड़प का इजहार करती हैं तो सावन-भादों को एक ही नजर से देखती हैं।

हिन्दी कवि आलोक धन्वा तो सबसे काली रातों, सबसे काले मेघों और सबसे तेज बौछारों का सारा क्रेडिट सावन के बजाय भादों को ही देते हैं। अपनी 'पतंग' कविता में वह लिखते हैं कि भादों मस्तूलों को झुकाती, नगाड़ों को गुंजाती, डंका पीटती, कुओं और तालाबों को झुलाती और साथ ही लालटेनों एवं मोमबत्तियों को बुझाती आती अपनी सबसे तेज बौछारों के साथ आता है और उन्हीं के साथ चला जाता है।

दादी बताती थीं कि कभी भादों में चिरई-चिरंगुल तक 'उपवास' करते थे, क्योंकि चैत में पैदा हुआ अनाज भादों तक खत्म हो जाता था और कुआर का महीना महीने भर दूर होता था। लेकिन भादों को कोई फर्क नहीं पड़ता। क्यों भला? हम पूछते तो दादी बतातीं : परम संतोषी है वह। इतने भर से संतुष्ट रह लेता है कि उसका नाम कुछ ऐसे लिया जाता है जैसे वह सावन का जुड़वा भाई हो।

भादों का स्वभाव अभी भी नहीं बदला है। निर्दंभ ही है वह। सावन

मेघमालाओं के साथ भीगते-भगोते आता है तो ढेर सारी उमंगें उनके नाम कर दी जाती हैं, लेकिन भादों में शुभ कार्य की इजाजत नहीं होती, क्योंकि सारे शुभ कार्यों के साक्षी माने जाने वाले विष्णु के बारे में मान्यता है कि भादों लगते ही वह शयन करने पाताल लोक चले जाते हैं।

भादों छठा और चातुर्मास का दूसरा मास है और उसकी पूर्णिमा पर आकाश में पूर्वा या उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रों का जो योग बनता है, उसके कारण उसका एक नाम भाद्रपद भी है। भगवान श्रीकृष्ण, उनकी आह्लादिनी राधा और बड़े भाई बलराम का जन्म भी उसी की धूप या छाया में हुआ है। उसके अंधेरे पाख की वह अष्टमी आती है– जब अपने भाई कंस के अत्याचार सहने को अभिशप्त और पति वसुदेव के साथ कारागार में बंद देवकी ने योगेश्वर कृष्ण को जन्म दिया और वसुदेव ने उन्हें कंस के हाथों से बचाने के लिए उफनाई यमुना पार कर गोकुल पहुँचाया– तो वह भरपूर उल्लसित होता है।

हरियाली तीज, हरितालिका तीज, कजली तीज, गणेश चतुर्थी, कलंक चतुर्थी, हेरम्ब संकष्टी, ऋषि पंचमी, बुला या कि बहुला चौथ, डोला ग्यारस और अनंत चतुर्दशी सब के सब इस भादों की ही अमानत हैं, जिनमें कोई महिलाओं के सौभाग्य का व्रत है, कोई अनंत पुण्य प्राप्त करने का, कोई भगवान कृष्ण और उनकी गायों के पूजन का तो कोई संतान कामना का। उज्जैन में, जहाँ द्वादश ज्योतिर्लिंगों में तीसरा महाकालेश्वर ज्योर्तिलिंग स्थित है, भादों के पहले दो सोमवारों को भगवान महाकाल की सवारी निकालने की परंपरा भी उसका गौरव बढ़ाती ही है।

फिर भी अनेक कवि और शायर उसे न तीन में गिनते हैं, न तेरह में। उलटे उसकी रातों को अपनी कोमलगात नायिकाओं के लिए नागिन तक बना डालते हैं। लोकगायक और गायिकाएँ तो यह तोहमत लगाने से भी बाज नहीं आते कि सावन बीत गया, भादों में गौरा पल-पल सूखी जाए।

ठीक है कि भादों की रातें काली भी होती हैं और अंधेरी भी, मगर काली तो नायिकाओं की लटें या जुल्फें भी होती हैं। वे नागिन सी लहराती हैं तो कविगण नायकों को उनसे डराते नहीं, उन्हें निहारने को ललचाते हैं, लेकिन भादों की रातों को लेकर डर का ऐसा तूमार बाँधते हैं जैसे वे मौका पाते ही नायिकाओं को सचमुच काट खाएँगी। इसलिए उनकी नायिकाएँ भले ही देश-दुनिया और अपने अंदर-बाहर का ढेर सारा अंधेरा बिना उफ किए झेल लेती हैं, भादों की रातों का रोना रोती कतई नहीं थकतीं।

मैथिल कोकिल विद्यापति तक शिकायत करते हैं कि उनकी नायिका भादों की रातों की हाथ पसारे न सूझने वाली अन्हियरिया में बार-बार चिहुंक उठती है। चिहुंक उठती होगी भाई, विरहिणी हुई तो कलपती भी होगी। मगर पिया उसके पास हुए तो चिहुंककर उनके अंक में भी तो समा जाती होगी। उस समा जाने का थोड़ा बहुत क्रेडिट भादों को देना चाहिए या नहीं?

महेन्दर मिसिर की यौवन के मद में माती नायिका अपने पिया को भरे भादों परदेस जाने को उद्यत देखकर सारी लाज-शरम बिसराकर यों ही तो नहीं कह देती कि वह चले गये और अकेली वह अपनी चढ़ी हुई जवानी को संभाल नहीं पाई, कुछ ऊँच-नीच कर बैठी तो वही जानें: अंगना में कीच-काच, दुअरा पै पानी, खाला-ऊंचा गोड़ पड़ी चढ़ल बा जवानी, केकरा पै छोड़ि जाल्या टुटही पलानी, केकरा से आगि मांगब, केकरा से पानी? एतना बता के जइहा, कइसे दिन बीती राम।

मलिक मुहम्मद जायसी ने जरूर भादों के साथ थोड़ा इंसाफ किया है। यह लिखकर कि कोई बाला अपने कंत के साथ हो तो उसके लिए क्या सावन और क्या भादों! आकाश में बिजली चमकती है तो उसे लगता है धरती पर सोना बरस रहा है। मेघ चमककर गरजते हैं तो वह चौंककर कंत को बांहों में भर लेती है। मलय समीर की सुगंध के बीच खिले हुए बेले के फूलों से उसकी सुख-सेज सजाई जाती है तो उसे सारा संसार हरा-हरा दिखाई पड़ने लगता है। फिर तो वह कुसुम्भी चोला पहनती और कंत के संग हिंडोला सजा लेती है। निस्संदेह, कंत नहीं होते, तो जायसी की विरहिणी नागमती को भी भादों 'दूभर' और 'अति भारी' लगने लगता है। वह व्याकुल होकर पूछने लग जाती है कि कइसे भरों रैन अंधियारी यानी यह अंधियारी रात कैसे बिताऊँ?

लेकिन सोचिए जरा कि इसमें भादों की भला क्या खता? नागमती को जो सता रहा है, वह तो रत्नसेन का वियोग है। उस वियोग के ही कारण उसकी सेज तक नागिन बनकर उसे डसने पर आमादा है और वह उसकी एक पाटी पकड़े रात गुजारने को अभिशप्त है। कभी उसकी आँखें फटने को तो कभी कलेजा मुंह को आ जाता है। लगता है कि बिजली बार-बार चमक कर एलान कर रही है कि विरहकाल उसके प्राण लेकर ही मानेगा।

फिर तो वह आक (मदार) और जवास की तरह सूख जाती और कलपती हुई कहने लगती है: बरसै मघा झकोरि झकोरी। मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी। उसकी इस हालत से पूरी सहृदयता बरतते हुए भी कहना होगा कि उसका ठीकरा भादों पर फोड़ना वैसे ही है जैसे एक शायर ने कहा है कि पूछिए यों तो सरासर है कुसूर आंखों का, दिल तो बस मुफ्त में बदनाम किया जाता है। इसका क्या तुक कि सारा कुसूर रत्नसेन के वियोग का और सारी तोहमतें भादों के सिर।

मुल्ला दाऊद के रचे हिन्दी के पहले ज्ञात सूफी प्रेमकाव्य 'चंदायन' के एक 'कड़वक' में उपनायिका मैना भी भादों को नहीं ही बख्शती। कहती है कि भादौं की अंधेरी रातें डरावनी भी थीं और क्रूर भी, जबकि मैं बालिका। न कोई सखी थी, न सहेली। बिजली चमकती थी तो मुझ अकेली का हृदय फट जाता था– आँखें जैसे फूटकर बह निकलने और धरती और सागरों को भरने को आतुर हो उठती थीं।

ऐसे में, लब्धप्रतिष्ठ कवि और गीतकार डॉ. ओम निश्चल को शुक्रिया कहने का मन होता है कि उन्होंने अपनी एक कविता में भादों का भरपूर खयाल रखा है :

पाँवों से कहो थिरकें हैं कह रही फिजाएं
यह धान का मौसम है...
सावन अभी गया है भादों का मन नया है
पत्तों में ताजगी है तन-मन भिगो गया है।
आने लगे हैं पाहुन
मेहमान का मौसम है। •

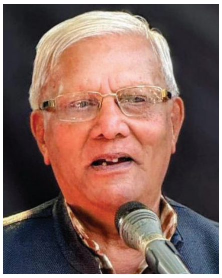

सच से भय खाती हैं अनैतिक सत्ताएँ

विजयदत्त श्रीधर

संस्थापक, माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय, एवं शोध संस्थान, भोपाल (म.प्र.)-462003 मोबाइल : 7999460151, 9425011467

ब्रिटिश सत्ताधीशों को भारतीय भाषाओं के समाचारपत्र-पत्रिकाओं से बहुत डर लगता था। यह शताब्दियों का अनुभव-सिद्ध यथार्थ है कि अनैतिक सत्ताएँ सदैव मुखर-प्रखर अभिव्यक्ति से भयाक्रांत रहती हैं। सन 1878 में लागू किया गया वर्नाकुलर प्रेस एक्ट इसका ज्वलन्त उदाहरण है। वायसराय लार्ड लिटन ने अपनी परिषद में इस कानून की जरूरत जतलाते हुए कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए थे। लार्ड लिटन ने कहा था–

"लेकिन सबसे अधिक साहसी राजद्रोह उत्तर भारत के भाषायी पत्रों में लिखा जा रहा है। एक मराठा राजधानी से प्रकाशित 'मालवा अखबार' का एक पैराग्राफ बहुत चुभता हुआ है। इसमें एक अफवाह का जिक्र है जिसने बम्बई के व्यापार और बाजार को प्रभावित किया है कि नाना साहेब रूसी सेना के साथ भारत पर आक्रमण करना चाहते हैं और फिर वे जार की सहायता से पेशवाओं के पुराने राज्य सातारा, बड़ौदा, नागपुर, झांसी आदि को सामन्ती राज्य के रूप में बनाना चाहते हैं जो पेशवाओं के सार्वभौम अधिकार को स्वीकार करेगा। इसी समाचार पत्र में पंद्रह दिन बाद अँगरेजी राज के बुरे समय और अंधकारमयी दिनों की बात करता है और कहता है कि पिछली रात हमने एक सपना देखा जिसमें एक हिरन ने एक शेर और एक बाघ को अपने कब्जे में कर रखा था।.... और ये सब होलकर की राजधानी से प्रकाशित होता है और इसमें संदेह नहीं कि हर एक दरबार में और मध्य भारत के हर एक बाजार में पढ़ा जाता है।"

(जब होलकर नरेश को वायसराय की नाराजगी का पता चला तो 'मालवा अखबार' के संपादक को गिरफ्तार कर तीन महीने कैद की सजा दी गई और अखबार बंद कर दिया गया)। पत्रकारिता के पुरखों को इस बात का एहसास था कि फिरंगियों की लूट-खसोट, अन्याय-अत्याचार पर प्रहार किया जाएगा तो हुकूमत के कोप का सामना भी करना पड़ेगा। इसके बावजूद स्वातंत्र्यकामी संपादकों ने निर्भीकतापूर्वक कलम चलाई। कभी तीखी टिप्पणियों तो कभी व्यंग्य की बौछारों से अपनी बात रखी।

'कविवचनसुधा' के प्रवेशांक (1867) में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने स्पष्टोक्ति की थी–

"खल जनन सो सज्जन दुखी मति होहि, हरि पद मति रहै।
अपधर्म छूटै, स्वत्व निज भारत गहै, सब दुख बहै।।"

अभिव्यक्ति की तीक्ष्णता की यह धार देखिए (सार सुधानिधि, 1879)–

"भीतर भीतर सब रस चूसे, बाहर से तन-मन-धन मूसे;
जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि साजन? नहिं अँगरेज।"

स्वाधीनता-पूर्व यह परंपरा थी कि संपादक अपने समाचारपत्र-पत्रिका के लिए कोई ध्येय वाक्य चुनते थे। यह ध्येय वाक्य प्रायः किसी श्लोक अथवा कविता की पंक्ति के रूप में होता था। वस्तुतः यह ध्येय वाक्य पत्र-पत्रिका और संपादक के कर्मपथ का उद्घोष होता था। योद्धा-पत्रकार गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' (1913) के शीर्ष पर

छपता था–

"जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है, और मृतक समान है।" दशरथ प्रसाद द्विवेदी के 'स्वदेश' (1919) का ध्येय वाक्य था–

"जो भरा नहीं है भावों से बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है, पत्थर है जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।"

'आज' (1920) के मुखपृष्ठ पर यह अर्द्धाली प्रकाशित की जाती थी– "पराधीन सपनेऊ सुख नाहीं।।"

सच कहने का ऐसा साहस और सलीका हिन्दी पत्रकारिता की थाती है। गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन 'भारत मित्र' में छपने वाली संपादक बालमुकुन्द गुप्त की व्यंग्योक्तियाँ 'शिव शंभू के चिट्ठे' का अनुवाद करवा कर सुनता था। बालकृष्ण भट्ट के 'हिन्दी प्रदीप' (1877) को अन्ततः 1908 में बंद हो जाना पड़ा, क्योंकि बंग-भंग आन्दोलन के दौर में उसने माधव शुक्ल विरचित यह कविता प्रकाशित की थी।

बम क्या है

"कुछ डरो न केवल इसमें बुद्धि भरम है। सोचो यह क्या है जो कहलाता बम है यह नहीं स्वदेशी आन्दोलन का फल है। नहीं बायकाट अथवा स्वराज्य की कल है। जब जब नृप अत्याचार महा करते हैं। और प्रजा दुखी चिल्लाते ही रहते हैं। नहीं दीनों की जब कहीं सुनाई होती। तब इतिहासों की बात सत्य ही होती। माधव कहता यह किसका बुरा करम है।

सोचो यह क्या है जो कहलाता बम है।।"

गणेश शंकर विद्यार्थी का 'प्रताप' बार-बार दमनचक्र का निशाना बनाया गया। प्रताप प्रेस से मुद्रित पुस्तक 'कुली प्रथा' को सरकार ने जब्त कर लिया। 30 अक्टूबर, 1916 को प्रेस से 1000 रुपये की जमानत माँगी गई। 22 अप्रैल 1918 को नानकसिंह हमदम की कविता 'फिदा-ए-वतन' प्रकाशित करने के बहाने जुर्माने की राशि जब्त कर ली गई। सन 1919 में चम्पारन और करतारपुर के मामलों को आधार बनाकर 'प्रताप' से फिर 2000 रुपये की जमानत माँगी गई। जनवरी, 1921 में रायबरेली के किसान आन्दोलन और मुंशीगंज

गोलीकाण्ड की रिपोर्ट तथा संपादकीय छापने पर 'प्रताप' पर फिर कानूनी कार्रवाई का शिकंजा कसा गया। विद्यार्थीजी ने इस मानहानि प्रकरण में माफी माँगने के बजाए जेल जाने का मार्ग चुना। 'प्रताप' से 3000 रुपये की जमानत और मुचलका माँगा गया। 17 नवंबर 1926 को थानेदार शिवदयाल सिंह की करतूतों की रिपोर्ट छापने के मामले में संपादक गणेशशंकर विद्यार्थी और प्रकाशक सुरेन्द्र शर्मा को 4-4 सौ रुपये जुर्माना और छह-छह माह कैद की सजा सुनाई गई।

'प्रताप' संपादक गणेशशंकर विद्यार्थी को संपादकत्व का मान-मूल्य निर्धारित करने का भी गौरव प्राप्त है। जब अदालत ने उनसे समाचार का स्रोत और संवाद लेखक का नाम पूछा, तब गणेशजी का जवाब था– "प्रताप में पहले अक्षर से लेकर आखिरी अक्षर तक जो भी छपता है, वह मेरी (संपादक की) जवाबदारी है।"

'प्रताप' के दिसंबर, 1925 अंक में सुभद्रा कुमारी चौहान की कालजयी कविता "खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसी वाली रानी थी" प्रकाशित हुई। अल्प काल में ही झाँसी की वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई को समर्पित यह कविता आजादी का तराना बन गई थी।

कविवर बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का गीत 'विप्लव गायन'– "कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ– जिससे उथल-पुथल मच जाए; एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए, एक अन्य प्रयाण गीत है। प्रताप के विशेषांक जोश जगाने वाले ऐसे गीतों और विषयों के तार्किक विश्लेषण के कारण जन-जन के प्रिय थे।

माखनलाल चतुर्वेदी के 'कर्मवीर' (जबलपुर, 1920) का तो प्रकाशन ही संपादक की इस हुंकार के साथ हुआ था– "आपका अँगरेजी पत्र तो दब्बू है, मैं वैसा पत्र नहीं निकालना चाहता हूँ। मैं ऐसा पत्र निकालना चाहूँगा कि ब्रिटिश शासन चलते-चलते रुक जाए। "सागर के पास रतौना में जब गोवंश-संहारक कसाईखाना खोलने का लायसेंस मध्य प्रान्त की सरकार ने दिया, तब कर्मवीर के प्रबल प्रतिरोध के कारण हुकूमत को अपना फैसला, वापस लेने पर विवश होना पड़ा था। कर्मवीर पर राजद्रोह के आरोप लगे। जमानत माँगी गई। प्रकाशन अवरुद्ध हुआ। क्योंकि वह जमानत भरने के खिलाफ था।

श्रीकृष्णदत्त पालीवाल के 'सैनिक' (आगरा, 1925) की संघर्ष गाथा भी ऐसी ही है। सन 1927 में सैनिक के दो अंक सरकार ने जब्त कर लिए। सन 1930 और 1932 में सैनिक से जमानत माँगी गई, जो भरने से उसने इनकार कर दिया। दूसरे महायुद्ध के समय जब सैनिक ने 'न एक पाई, न एक भाई' और 'युद्ध की लपटें' अग्रलेख लिखे तब संपादक को भारत रक्षा कानून में जेल में डाल दिया गया। सन 1940 में सैनिक प्रेस पर ताला डाल कर पुलिस का पहरा बैठा दिया गया। यह तालाबंदी 74 दिनों तक चली।

प्रेमचंद के 'हंस' से जून 1930 में एक हजार रुपये की जमानत माँगी गई। जब कोई प्रेस 'हंस' का अंक छापने को राजी नहीं हुआ, तब पाँच माह तक वह बंद रहा। सन 1936 में गोविंददास का एकांकी 'सिद्धान्त स्वातंत्र्य' प्रकाशित करने पर 'हंस' से फिर जमानत माँगी गई। ऐसा ही बरताव प्रेमचंद के 'जागरण' के साथ हुआ। 27 अक्टूबर 1932 के अंक में कहानी 'उसका अंत' को सरकार ने अपने लिए लिखी गई कहानी माना और जागरण तथा सरस्वती प्रेस से एक-एक हजार रुपये की जमानत माँगी गई।

दशरथ प्रसाद द्विवेदी का 'स्वदेश' (1919, गोरखपुर) ऐसा साप्ताहिक रहा जिसके डमी अंक पर ही जमानत माँग ली गई थी।

पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांक

अनुभवों से यह सच सामने आया है कि जब विकट चुनौतियों से जूझ रहे होते हैं तब हमारा सर्वश्रेष्ठ सामने आता है। स्वाधीनता-आंदोलन के दिनों में भारतीय भाषाओं के अधिकतर पत्र-पत्रिकाओं ने जिस तेजस्विता और संघर्षशीलता का परिचय दिया, वह बौद्धिक पराक्रम का अनुपम उदाहरण है। उस दौर की पत्र-पत्रिकाओं के सामान्य अंकों में स्वाधीनता आंदोलन की गतिविधियों की सूचनाएँ और समाचार मिलते हैं। परन्तु समय-समय पर प्रकाशित होने वाले विशेषांक रोष और जोश जगाने की प्रच्छन्न भूमिका निभाते थे। फिरंगी हुकूमत की दमन और प्रताड़ना की कार्रवाइयाँ भी संपादकों के हौसले नहीं तोड़ पाती थीं। ये विशेषांक भारतीय पत्रकारिता की गौरवशाली धरोहर हैं। उनके कथ्य और तथ्य, भाषा और शैली, विषयों का चयन और प्रस्तुति, प्रामाणिक संदर्भ सामग्री जुटाने का श्रम और धीरज और वह भी साधनहीनता के उस जमाने में, अचंभित करता है। साथ ही कलम के उन महान पुरखों की साधना के सामने नतमस्तक भी करता है। यह उन्हीं की तपोनिष्ठ जिजीविषा का प्रतिफल है कि पत्रकारिता को मिशन का दर्जा मिला। पत्रकारों को समाज में विशिष्ट सम्मान प्राप्त हुआ। सोचने-समझने की बात यह है कि लोक मान्यता अर्जित करना जितना कठिन होता है, उसे बनाए रखना उससे भी ज्यादा मुश्किल होता है।

'चाँद' का फाँसी अंक

फिरंगी हुकूमत द्वारा जब्तशुदा पत्रिकाओं में सबसे चर्चित 'चाँद' का 'फाँसी अंक' रहा है। रामरख सिंह सहगल ने 1922 में मासिक पत्रिका 'चाँद' का संपादन-प्रकाशन आरंभ किया था। 'चाँद' के विषय केन्द्रित विशेषांक संदर्भ ग्रंथ सदृश होते थे; पठनीय, मननीय और संग्रहणीय। विशेषांकों का संपादन अतिथि संपादक करते थे। फाँसी अंक का संपादन चतुरसेन शास्त्री ने किया था। 324 पृष्ठ के फाँसी अंक का आरंभ महात्मा ईसा को सूली पर चढ़ाने के हृदय विदारक दृश्य-चित्र के साथ हुआ है। संपादक की मर्मस्पर्शी विनयांजलि देखिए– "चाँद की बहिनों, भाइयों और बुजुर्गों के हाथ में– दीपावली के शुभ अवसर पर 'फाँसी अंक' जैसा हृदय को दहलाने वाला साहित्य सौंपते हमारा हाथ काँपता है।" देश-काल-परिस्थिति का खुलासा करते हुए संपादक भारतवासियों का हौसला बढ़ाते हैं– "निकट ही वह दिन है। कुछ मास व कुछ वर्ष व्यतीत होने दो– एक महान विप्लव की आँधी सायँ-सायँ करती चली आ रही है, जो पचासों वर्षों तक भारत को दिवाली के दिए न जलाने देगी, परन्तु उसके बाद जो दिए जलेंगे वे क्षुद्र मिट्टी के टिमटिमाते दिए न होंगे– वे होंगे रत्नदीप; और उन्हें साक्षात राज्य-लक्ष्मी अपने हाथों से जलावेगी!"

'फाँसी अंक' की विषय सूची पूरा विशेषांक पढ़ने को प्रेरित करती है। संपादकीय विचार के पाँच शीर्षक देखिए– दण्ड का निर्णय,

अपराध का विकास, कानून और उसका विकास, क्रान्तिवाद और फाँसी। पं. रामचरित उपाध्याय की कविता 'प्राणदण्ड' में एक सनातन सवाल की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है–

"जिसने जिसे बनाया उसका अधिपति भी है एक वही।
दूजा उसे नष्ट करने का रखता है अधिकार नहीं।।"

प्राणदण्ड, फाँसी की सजा, तांतिया भील और उसकी फाँसी, फ्रांस की राज्य-क्रांति के कुछ रक्त रंजित पृष्ठ, भारतीय दण्ड विधान और फाँसी, सन 57 में दिल्ली के लाल दिन, फाँसी में स्त्रियों का प्राणदण्ड, पिता अब्राहम लिंकन का वध, चार्ल्स का कत्ल, महाराज नन्दकुमार को फाँसी, संस्कृत साहित्य में प्राणवध आदि लेखों में विषय का विशद विवेचन हुआ।

विप्लव-यज्ञ की आहुतियाँ अध्याय में कूका-विद्रोह के बलिदान, चापेकर बंधु कन्हाई लाल दत्त, सत्येन्द्रकुमार बसु, मदनलाल ढींगरा, अमीर चंद, अवधबिहारी, भाई बालमुकुन्द, बसंतोकुमार विश्वास, भाई भागसिंह, भाई वतन सिंह, मेवा सिंह, काशीराम, गन्धा सिंह, करतार सिंह, वी.जी. पिंगले, जगत सिंह, बलवंत सिंह, डा. मथुरा सिंह, बन्ना सिंह, रंगा सिंह, वीर सिंह, उत्तम सिंह, डा. अरुड़सिंह, बाबू हरिनाम सिंह, सोहनलाल पाठक, सूफी अम्बाप्रसाद, भाई रामसिंह, भान सिंह, यतीन्द्रनाथ मुकर्जी, नलिनी वाक्च्य, ऊधमसिंह, गेंदालाल दीक्षित, खुशीराम, गोपीमोहन साहा, बोली– युद्ध के चार शहीद, धन्ना सिंह, बन्ता सिंह धामियाँ, वरयाम सिंह धुग्गा, किशन सिंह गर्गज्ज, सन्ता सिंह, दलीप सिंह, नन्द सिंह, कर्मसिंह, रामप्रसाद 'बिस्मिल', राजेन्द्रनाथ लहरी, रोशन सिंह, अशफाक उल्ला खां, प्रभृति शहीदों का हृदयस्पर्शी विवरण है। मातृभूमि के लिए फाँसी का फंदा चूमने वाले ऐसे बलिदानियों के कारण स्वतंत्रता संग्राम जोश, जुनून और जज्बे से भरता गया। एक सौ प्रासंगिक चित्रों से फाँसी अंक के कलेवर को प्रामाणिकता प्रदान की गई।

'फाँसी अंक' की दस हजार प्रतियाँ प्रकाशित हुई थीं। विलंब से प्राप्त कई रचनाएँ प्रकाशित होने से रह गईं। संपादक ने घोषणा की थी कि एक और खण्ड प्रकाशित कर उनका समावेश कर लिया जाएगा। परन्तु फाँसी अंक जब्त किए जाने के कारण वह सिलसिला थम गया।

'हिन्दू पंच' का बलिदान अंक

'हिन्दू पंच' का प्रकाशन 20 जून 1926 को कोलकाता से बाबू रामलाल वर्मा ने किया। संपादक पं. ईश्वरी प्रसाद शर्मा थे। प्रवेशांक में 'हिन्दू पंच' के ध्येय का परिचय देते हुए संपादक ने लिखा– "राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति, साहित्य-चर्चा चाहे जिस दिशा में हमें अन्याय, अधर्म, अनाचार और अत्याचार होते दिखाई देंगे, उसी ओर अंगुलि-निर्देश करना और जनता को खोटे-खरे की पहचान करा देना हमारा कर्त्तव्य होगा। 'हिन्दू पंच' के जितने भी अंक पढ़ने को मिले, एक बात स्पष्ट समझ आती है कि राष्ट्रीय स्वाभिमान के पक्ष में और पराधीनता के विरोध में, साथ ही समाज में व्याप्त विसंगतियों के खिलाफ संपादक की कलम चलती रही है। इसका पुरस्कार भी संपादक और संचालक को समय-समय पर मिलता रहा है, जुर्माना-जब्ती-जेल के रूप में।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि से समझा जा सकता है कि 'हिन्दू पंच' का बलिदान अंक किस तेवर के साथ निकला होगा। 'बलिदान अंक एक जनवरी, 1930 को प्रकाशित हुआ। पृष्ठ संख्या 364 थी। अंक का खण्ड विभाजन इस प्रकार था– प्राचीन भारत के बलिदान, मध्य भारत के बलिदान, वर्तमान भारत के बलिदान, कविता खण्ड और विदेशों में बलिदान। संपादक कमलादत्त पाण्डेय ने तब पं. ईश्वर प्रसाद शर्मा का स्थान ले लिया था। 'बलि-वेदी पर' शीर्षक संपादकीय में आहवान किया गया– "जिस तरह बीज स्वयं नष्ट होकर नये अंकुर उत्पन्न करता है, उसी तरह हमें भी बलि चढ़ कर एक नयी सुखदायी सृष्टि करनी है !" बलिदान अंक सवाल उठाता है– क्या माता की परतंत्रता से हमें लज्जा नहीं आती? हमारी वह समृद्धशालिनी रत्नगर्भा माता, जो किसी समय धन-धान्य से परिपूर्ण थी, आज दरिद्र भिखारिणी हो रही है। परतंत्रता और दासता में रहते-रहते क्या अब हम ऐसे निष्प्राण हो गए हैं, कि यह दासवृत्ति त्याग देने का हम प्रयास भी नहीं कर सकते? हम जानते हैं, कि हमारे विरुद्ध प्रचण्ड शक्ति अपने सम्पूर्ण सैनिक बल से खड़ी हमें गुरेर रही है, पर क्या हम पतंगे से भी गए बीते हैं, जो अग्नि में गिर कर प्राण भी नहीं दे सकते?" "इसलिए देश के नौजवानो! उठो जागो और माता के लिए अगणित बलिदान देने को तैयार हो जाओ!!"

उपर्युक्त ध्येय के अनुरूप सामग्री चयन बलिदान अंक को अत्यंत प्रभावी बनाता है। 'प्राचीन भारत के बलिदान' खण्ड में ऐसे पौराणिक चरित्रों का समावेश है जो भारतीय मानस को सदैव उत्प्रेरित करते हैं। जोश भरते हैं। ये शीर्षक देखिए– सत्याग्रही प्रह्लाद, जटायु का बलिदान।

'मध्यकालीन भारत के बलिदान' खण्ड का एक-एक चरित्र राष्ट्र के लिए बलि वेदी पर बलिदान होने का आह्वान करता है। महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, दुर्गादास, महारानी लक्ष्मी बाई, गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविंद सिंह, पंजाब केसरी रणजीत सिंह ऐसे ही दुर्धर्ष चरित्र हैं जिन्होंने राष्ट्र गौरव, स्वाधीनता और स्वाभिमान को अपने जीवन से भी ऊपर रखा। संघर्ष की मशाल को प्रज्ज्वलित रखा।

स्वाभाविक ही बलिदान अंक का सबसे ओजस्वी खण्ड 'वर्तमान भारत के बलिदान' है। जलियांवाला बाग का लोमहर्षक नरसंहार, नाना साहब धुन्धुपंत, महारानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, खुदीराम बोस, कन्हाई लाल दत्त, अमीरचंद, मदनलाल ढींगरा, राजेन्द्र लाहिड़ी, अशफाक उल्ला, रामप्रसाद बिस्मिल, ठाकुर रोशन सिंह, रासबिहारी बोस प्रभृति नायकों की महान संघर्ष गाथाएँ रोंगटे खड़े कर देने वाली हैं।

दो बड़ी घटनाएँ बलिदान अंक' का वैचारिक आधार रचने वाली रहीं। एक साइमन कमीशन का बहिष्कार और विरोध-प्रदर्शन का नेतृत्व करते हुए भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की महानायकत्रयी लाल-बाल-पाल में शरीक लाला लाजपत राय पर पुलिस का क्रूर लाठी प्रहार, जो अन्ततः लाला जी की मृत्यु का कारण बना। इससे देश भर में रोष का ज्वार उठ खड़ा हुआ। दूसरे, वर्ष 1929 के आखिरी दिनों में रावी के तट पर हुए कांग्रेस अधिवेशन में पूर्ण स्वतंत्रता को राष्ट्रीय

संकल्प घोषित करना। इसी संदर्भ में बलिदान अंक के मुखपृष्ठ को देखना होगा। शीर्षक के बीचों बीच लाला लाजपत राय का चित्र है। ऊपर पं. जवाहरलाल नेहरु का उद्घोष है– "पूर्ण स्वतंत्रता हमारा ध्येय है।" नीचे नेहरू जी का चित्र है। उसके दाएँ-बाएँ– नीचे महारानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे यतीन्द्र, मुखर्जी, पिंगले, राजेन्द्र लाहिड़ी, राम प्रसाद बिस्मिल, रोशन सिंह, अशफाक उल्ला, मैना, प्रफुल्ल, चाकी, खुदीराम, कन्हाईलाल, सत्येन्द्र बसु के चित्र हैं।

जाहिर है, बलिदान अंक पाठक समाज को सिर्फ सूचित ही नहीं कर रहा था। वह झकझोर रहा था, ललकार रहा था देश की जवानी को देश की आजादी के लिए संघर्ष करने और बलिदान की भावना जगा रहा था। स्वाभाविक है कि 'बलिदान अंक' को जब्त होना ही था।

'महारथी' का लाजपत अंक

विजयादशमी, 1925 को हिन्दी मासिक पत्रिका 'महारथी' दिल्ली से रामचन्द्र शर्मा के संपादन में निकली। प्रवेशांक में संपादक ने लिखा- महारथी केवल तीन उद्देश्य को सामने रख कर अवतीर्ण हुआ है। पहला उद्देश्य राष्ट्र निर्माण है। भारतीयता का प्रचार करके चिरसुप्त राष्ट्रीय विचारों को जाग्रत करना, धार्मिक और नैतिक दृष्टि से जनता को सावधान करना इसका प्रथम उद्देश्य है। महारथी का दूसरा उद्देश्य समाज सुधार है– जिसके बालक और स्त्री इन दो मुख्य अंगों पर महारथी विशेष ध्यान देगा। इसका तीसरा उद्देश्य है देश प्रेम। भारत की प्राचीन पुनीत सभ्यता के प्रचार और संदेशों द्वारा संसार भर को प्रेम और एकता के सूत्र में संगठित कर मनुष्य जीवन की समस्याओं पर पूर्ण विचार करके जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करने का पथ परिष्कृत करना और संसार भर में चिरशान्ति को स्थापित करना इसका अंतिम उद्देश्य है।"

क्षमा

÷÷÷

जो प्रेम करते हैं
गलती होने पर
क्षमा मांग लेते हैं

इस तरह प्रेम करने वाला
प्रेम और अपने आत्मीय
दोनों को बचा लेता है

जो गलती होने पर भी
क्षमा नहीं माँगते

वे अपने अहम और ज़िद के चलते
अपने आत्म को तो बचा लेते हैं

लेकिन!अपने प्रेम
और आत्मीय को खो देते हैं।

■

जसवीर त्यागी

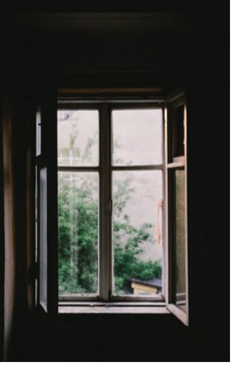

महारथी के शक्ति अंक, राजपूत अंक, प्रताप अंक काफी चर्चित हुए थे। इसी श्रृंखला में नवंबर, 1930 में प्रकाशित 'लाजपत अंक' फिरंगी हुकूमत ने जब्त कर लिया था। इस विशेषांक की विषय वस्तु से पता चलता है कि लाला लाजपत राय का भारत के जनमानस पर कितना गहरा प्रभाव था। लालाजी के महान कृतित्व का दस्तावेज है यह विशेषांक। इसीलिए उसे समाज तक पहुँचने से रोकने के लिए जब्ती का रास्ता अपनाया गया।

बिन बुलाये मेहमान– साइमन कमीशन का विरोध हो रहा था। लाला लाजपत राय आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे थे। पुलिस के क्रूर लाठी प्रहार ने लालाजी को ऐसा गहरा घाव दिया कि अन्ततः वे शहादत को प्राप्त हुए। देश में और देश के बाहर उन्होंने भारत की आजादी के लिए बहुत काम किया। वे राजनीतिक नेता थे। समाज सुधारक थे। लेखक-संपादक थे। 'लाजपत अंक' में देश के कोने कोने से समाचार पत्र-पत्रिकाओं की टिप्पणियों और प्रमुख जनों की शोक संवेदनाओं से लाला लाजपत राय की राष्ट्र जीवन में महत्ता का परिचय मिलता है।

'प्रभा' का झण्डा अंक

यह ऐतिहासिक झण्डा सत्याग्रह का शताब्दी वर्ष है। 18 मार्च 1923 को जबलपुर में झण्डा सत्याग्रह आरंभ हुआ था। असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के बाद कांग्रेस के प्रमुख नेताओं का देशव्यापी दौरा चल रहा था। उनके जबलपुर आगमन पर नगरपालिका के सदस्यों ने निश्चय किया कि पालिका-भवन पर राष्ट्रीय झण्डा फहराया जाए। तब राष्ट्रीय झण्डा-तिरंगे के बीच में चरखा बना रहता था। वस्तुतः यह राष्ट्रीय आन्दोलन का ध्वज था। झण्डा फहराया गया। तब अंगरेजी हुकूमत के अफसरों ने पुलिस से झण्डा उतरवा दिया। उसे रौंदा भी गया। इस अपमान ने जनमानस को आक्रोश से भर दिया। जन-आन्दोलन भड़क उठा। गिरफ्तारियाँ शुरू हो गईं। गिरफ्तारी देने वालों में तपस्वी पं. सुन्दरलाल और राष्ट्रीय धारा की कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान प्रमुख थे। कुछ समय बाद आन्दोलन का केन्द्र जबलपुर से नागपुर स्थानांतरित हो गया। उसके नेतृत्व की जवाबदारी सरदार वल्लभ भाई पटेल को सौंपी गई। कोई डेढ़ महीने तक धरना और गिरफ्तारियों का सिलसिला चलता रहा। अन्ततः 18 अगस्त को माखनलाल चतुर्वेदी के नायकत्व में निकले जुलूस में वह ऐतिहासिक घड़ी आ गई, जब फिरंगी हुकूमत ने नागपुर की सिविल लाइन अर्थात शासन के मुख्य मुकाम के सामने से राष्ट्रीय ध्वज का जुलूस निकालने में कोई व्यवधान पैदा नहीं किया। प्रकारान्तर से यह राष्ट्रीय झण्डे को मान्यता ही थी। उसी दिन शाम को हुई सभा में सरदार वल्लभ भाई पटेल ने झण्डा सत्याग्रह समाप्त करने की घोषणा कर दी।

'प्रभा' के संपादक बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को यह जरूरी लगा कि झण्डा सत्याग्रह का विस्तार से विवरण एक अंक में संजोकर उसे पीढियों के ज्ञान के लिए सुरक्षित कर दिया जाए। तदनुसार अक्टूबर, 1923 में प्रभा का 'झण्डा अंक' प्रकाशित हुआ। यह स्वाधीनता आन्दोलन के महत्वपूर्ण दस्तावेजों में शामिल हुआ। ●

विभिन्न शाखाओं द्वारा आयोजित कार्यक्रम

PRINTED VISHWA - ISSN 25721550
ONLINE e-VISHWA - ISSN 25721569

पहाड़ी चित्रकला शैली में राम रावण युद्ध

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा।।
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा।
नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना।।
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होइ सो स्यंदन आना।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा।
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना।।
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीत न कहँ न कतहुँ रिपु ताके।
महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर।